

प्रकाशक

रामकृष्ण शर्मा

हिन्दी साहित्य संभार

नई सडक, दल्ला ।

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य

“दो रुपये पचास नये पैसे”

मुद्रक

नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चांदनी चौक, दिल्ली ।

‘पृथ्वीराज रासो में वीर भावों की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है और कहीं-कहीं कोमल कल्पनाओं और मनोहारिणी उक्तियों से इसमें अपूर्व चमत्कार आ गया है’—उपर्युक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

७७

१३ निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(क) रासो के विभिन्न रूपांतर (ख) भट्टायत सवत् और अनद सवत्
(ग) चन्द्र तथा भूषण का वीर काव्य (घ) रासो के काव्यों की विशेषताएँ ।

८२

द्वितीय खण्ड

आदि पर्व सटीक

८५—१६१

तृतीय खण्ड

पद्मावती समय सटीक

१६५—१६३

परिशिष्ट-१

रासो प्रश्निका ।

१६४

परिशिष्ट-२

विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गये उद्धरणों की सूची ।

१६५

परिशिष्ट-३

सहायक पुस्तकों की सूची ।

१६६

प्रथम खण्ड

पृथ्वीराज रायों का आलोचनात्मक एवं शोधपूर्ण विवेचन

था । गौरी ने चद से पृथ्वीराज के सवध में प्रश्न किया और चद ने स्त्री शका के ममाधान के हेतु रासो की कथा सवाद रूप में कही ।

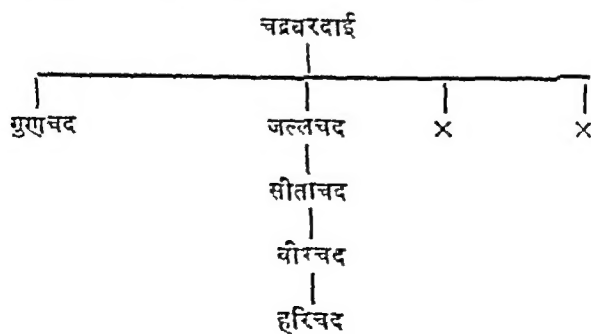
चद्रवरदाई के दोनो पत्नियों से एक कन्या और दस बालक थे । कन्या नाम राजवाई था और बालको में से चौथे पुत्र का नाम जल्हण या जल्हा था । जल्हण भी प्रतिभावान था और रासो के अनुसार जब चद ने गजनी प्रस्थान किया तब पुस्तक पूरी करने का भार जल्हण को सौंप दिया । सका कर्ता का इस प्रकार का दोहा रासो में पाया भी जाता है यथा—

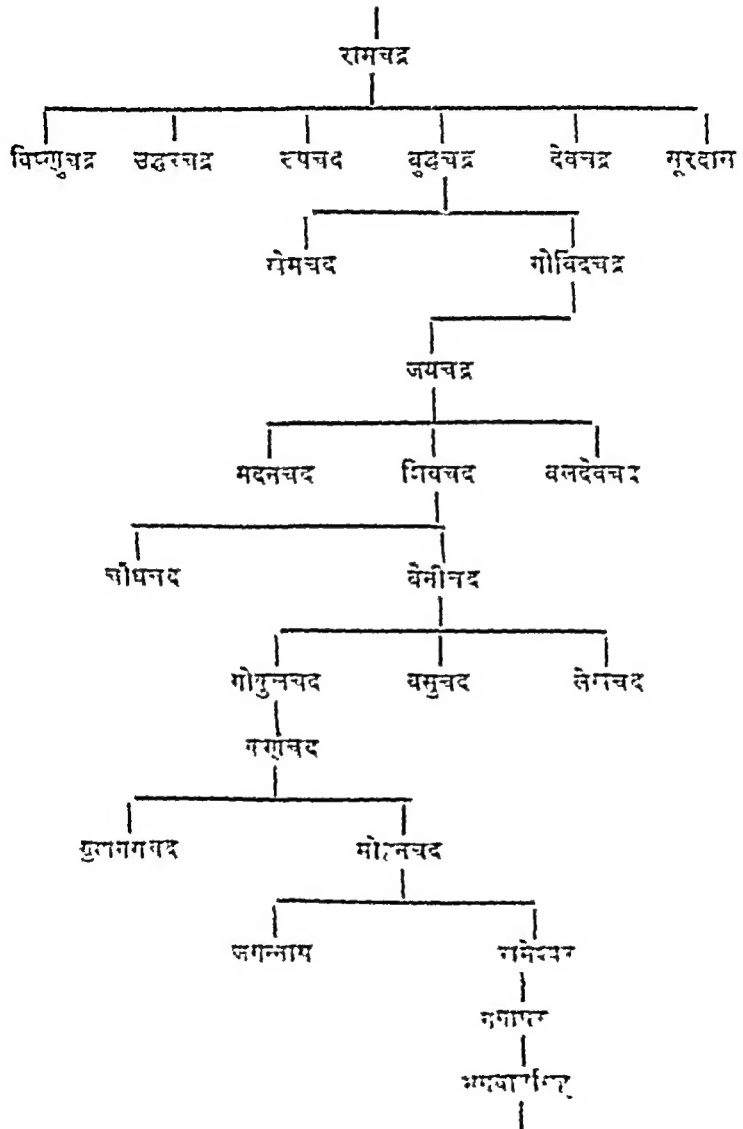
आदि अन्त लागि वृत्तमन ब्रन्नि गुनी गुनराज ।

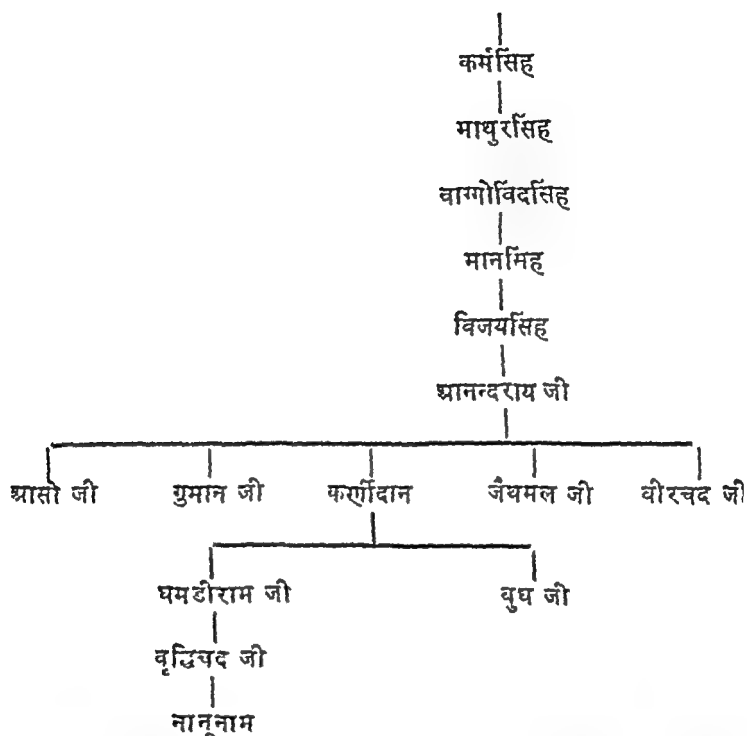
पुस्तक जल्हण हत्थ दै चले गरजन नृप-काज ॥

इसके पश्चात् चद्रवरदाई 'रासो' के अनुसार गजनी में जाकर, पृथ्वीराज के हाथ से गौरी को मरवा कर, एक दूसरे को मार कर मरे । किंतु ऐतिहासिक तथ्यानुसार पृथ्वीराज का देहात गजनी में न होकर, तराइन के युद्ध में मिला स० १२४६ में हुआ ।

चद जाति के भट्ट थे । उनके वर्तमान वंशज अब तक नागौर में रह रहे हैं । महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री को अपनी ऐतिहासिक रचनायात्राओं के समय इसी वंश के वर्तमान प्रतिनिधि नानूराम भाट से भेंट हुई । उनसे उन्हें चद का वंश-वृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है—







नानूनाम का कहना है कि चन्द के चार लडके थे जिनमें से एक मुसलमान हो गया । दूसरे का कुछ पता नहीं, तीसरे के वंशज अमोर में जा बसे और चौथे बल्ल का वंश नागौर में बना । पृथ्वीराज रामों में चंद के लडकों के उल्लेख इस प्रकार है —

दहति पुत्र कविचंद के सुन्दर रूप सुजान ।

इन्द्रक पल्लव गुन बावरो गुन समुन्द ससभान ॥

पृथ्वीराज रामों में कवि चंद के दत्त पुत्रों के नाम लिए गए हैं । मूरदाह की साहित्य लहरी की टीका में एक पद ऐत आया है जिनमें मूर की वंशावली दी है । वह पद यह है—

प्रथम ही प्रभु यज्ञ ते भे प्रकट अद्भुत रूप,
 ब्रह्मराम विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप ।
 पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय,
 कण्ठो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अविकार्य ।
 पारि पायन मुख के सुसंहित अस्तुति कीन,
 तासौ वस प्रसम में भी चंद चारु नवीन ।
 भूप पृथ्वीराज दीन्हें तिन्हें ज्वाला देस,
 तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेन ।
 दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद मरुप,
 वीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप ।
 रंथभीर हमीर भूपति नंग खेलत जाय,
 तालु वंस अनूप भो हरिचंद अति विख्याय ।
 आगरे रदि गोपचल मे रणो ता सुत वीर,
 पुत्र जनम सात ताके महाभट गंभीर ।
 कृष्णचंद, उदारचंद जु रूपचंद सुभाड,
 युद्धिचंद प्रकाम चौथे चंद भे सुरागाड ।
 देवचंद प्रबोध मसूत चंद ताको नाम,
 भयो मप्तो नाम सूरजचंद मंद निराम ॥

इन दोनों बनावलियों के निकाने पर मुख्य भेद यह प्रकट होता है कि
 नानुराम ने जिनकी जन्मचंद की परंपरा में बनाया है, वस्तु पर मे उन्हें गुरु
 चंद की परंपरा में रत्न गया है । नानुराम का कहना है कि जनों की धार्मिक प्रति
 उनके पास है किन्तु उन्होंने महोपासन की जो प्रगतिविधि बताना होता था
 ५० हरप्रसाद नामों की दो थी, यह भी निगल समुद्र है ।

महात्मीन परिस्थितियाँ—प्रयोग यदि करने का की धार्मिक, राजनीतिक
 और सामाजिक परिस्थितियों में प्रभावित होता है । चन्द्रगरी के राज्य का
 महात्मीन करने में तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है उन युग की

राजनीतिक और सामाजिक अवस्था अतस में चित्रपट की भांति साकार रूप धारण कर लेती हैं। संक्षेप में उनका वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है—

राजनीतिक अवस्था—इस युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत ही विषम थी। सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हिंदू राज्य की केंद्रीयभूत सत्ता का विनाश होना प्रारंभ हो गया था। विभाजक शक्तियों का इतना अधिक प्राबल्य हुआ कि साधारण घटनाओं ने ही राज्यों के उत्थान और पतन का बीज बोना प्रारंभ किया। मुसलमानों ने इससे पूरा लाभ उठाया और उत्तर भारत का अधिकांश भाग मुसलमानों के हाथ आ गया। यह काल भारत की प्राचीनता की वृद्धावस्था है जबकि उसके पाम शक्ति का अभाव और विवशता का अवलम्ब है। इन काल का इतिहास अनेक छोटे छोटे राज्यों के उत्थान और पतन की कहानी मात्र है।

सामाजिक अवस्था—सामाजिक दृष्टि से भी उस युग में पारस्परिक संघर्ष का ही अधिक बोलबाला था। उस समय, विवाह, मेले और उत्सव आदि समस्त सामाजिक कार्य अतंतु युद्ध अवस्था संघर्ष में परिणत हो जाते थे। इस प्रकार से समाज में अव्यवस्था और अराजकता का बोल बाला था, ब्राह्मण पूज्य अवश्य नमस्ते जाते थे किंतु उनकी श्रेष्ठता पहले की अपेक्षा कम हो चली थी। समाज में क्षत्रियों का प्राधान्य हो गया था। राजपूत वीर, शक्तिशाली और उदार थे किंतु छोटी ठोटी बातों में पट कर, वैयक्तिक स्वर्वा के बन्दी भूत हो कर, राष्ट्र या व्यापक हित भूलकर परस्पर लड़ा करते थे। यह ठीक है कि उस समय भी बौद्धदेव, राणा नागा आदि कुछ क्षत्रिय राजाओं में राष्ट्रीय भावना विद्यमान थी किंतु अधिकांश क्षत्रियों में राष्ट्रीय भावना का अभाव था। समाज-जाति-पाति, गोत्र आदि के झगड़े में पट कर एक्य भावना भूल चुका था। उन्नीसवीं शताब्दी का प्रथा का श्रीगणेश भी हो गया था किंतु विधवा विवाह या प्रचमन नहीं हुआ था।

प्रश्न २—रासो शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विभिन्न विद्वानों के मतों का परीक्षण कीजिए तथा रासो काव्य-परम्परा में मदेशरासक, सुमान रासो और श्रीमत्तदेव रासो का विस्तृत परिचय देते हुए पृथ्वीराज रासो का स्थान निर्धारित कीजिए ।

प्राचिनक युग में किसी भी कृति का मूल्यांकन करने समय प्रायः उनके व्युत्पत्ति मूलक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है, फलतः रासो का मूल्यांकन करने समय हम इसी विविध दृष्टियों से विचार करेंगे ।

रासो शब्दों के व्युत्पत्ति-मूलक अध्ययन से हमारा तात्पर्य रासो शब्द की उत्पत्ति से है । साहित्य जगत में रासो शब्द के अर्थ तक छ. रूप मिले हैं रास, रासा, रासो, रासी, रासगो और रासमा । इनके व्युत्पादन में समय-समय पर मन्त्र के छ. शब्द रसा रहस्य, रसायण, राजादेश, राजपश, रास और रासग प्रस्तुत किए गए हैं । इनमें से रहस्य शब्द से ही रासो का उद्भूत होना हिन्दी शब्द शास्त्र मानता है । पर शातव्य यह है कि रहस्य का प्राकृत रूप रहस्य तो मिलता है पर रासा या रास नहीं, परिणामतः आज रासो शब्द का सम्बन्ध रहस्य शब्द से नहीं जोड़ा जाता ।

मानार्थ मुक्त अपने इतिहास में रासो की उत्पत्ति रसायण से मानते हैं । वस्तुतः रसायण से रासो का हो जाना सम्भव नहीं है । लेकिन रसायण शब्द से रासो तक पहुँचने-पहुँचने जिन विभिन्न रूपों में यह शब्द रहा होगा उनमें से किसी भी रूप का परिचय मुक्त जी ने नहीं कराया है, श्री- इन परिचय के पक्ष में रसायण शब्द के रसायण शब्द का हो जाना है, अग्नि रसायण, शब्द रसायण १ दि की भाँति । राजादेश और राजपश शब्दों की रूपना स्वीकृति की गई कि शब्दों का सम्बन्ध यह रहे । राजादेश का सम्बन्ध होता है । राजादेश का रसायण शब्द प्रचलित है । तुलसीदास ने रासो में राजादेश प्रयोग बहुत से स्थानों पर किया है परन्तु रासगो, रासगु पदों, रासायण का प्रयोग नहीं मिलता । राजादेश और रसायण का पद राजाश है । इन प्रकार

से केवल राजा होने से ही राजादेश का अर्थ राज-काव्य कैसे हो जाएगा, यह कुछ समझ में नहीं आता। राजयश की कल्पना भी ठीक इसी प्रकार से निभ्रात नहीं है।

पृथ्वीराज रासो के हस्तलेख में ही अनेकों पुष्पिकाओं में पृथ्वीराज रासक शब्द आया है। रासो का मूल संस्कृत रूप वही रासक शब्द है। प्रमाणरूपेण हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार से संस्कृत के 'घोरक' शब्द से ब्रज का घोरो, खड़ी बोली का घोडा, और अवधी का घोर निकला वैसे ही रासक से ब्रज का रासो और खड़ी बोली का रासा और अवधी का रास बना। रामक का प्राकृत रासय ब्रज के अनुरूप रायनो तथा खड़ी बोली के अनुरूप रायसा शब्द बना। रासक शब्द का अर्थ काव्य है, इसलिए पृथ्वीराज रासो का अर्थ पृथ्वीराज काव्य है।

डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार "रासो मूलतः ज्ञानयुक्त नृत्य विशेष से प्रमश विफसित होते-होते उपरूपक और फिर उपरूपक से घोर रस के पद्यात्मक प्रवन्धों में परिणत हो गया।"

काव्य परम्परा की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो इस प्रकार की प्रथम प्रामाणिक कृति अपभ्रंश-युगीन नदैन रामक है। इसका प्रणयन मुल्तान के मुस्लिम कवि अब्दुररहमान ने ग्यारहवीं सताब्दी में किया था। इसकी कहानी बहुत नरन और मर्मस्पर्शी है। मुल्तान को जाते हुए किमी पथिक का एक ऐसी त्रिरहिणी स्त्री से साक्षात्कार होता है जिसका पति कार्यवश मुल्तान गया था। वह त्रिरहिणी प्रथम वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में अपने ऊपर बीते हुए दुःख की क्या नुमाती है और फिर प्रिय के लिए कुछ नदेश भेजती है। उस संदेश में ऐसी कर्ण वेदना है जो पाठक का ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इसकी उपमाएँ यद्यपि परम्परागत हैं तथापि बाह्य-रस की वैसी व्यञ्जना उममें नहीं है जैसी आंतरिक अनुभूति की। ऋतु वर्णन के प्रमग में बाह्य प्रकृति इत न्य में चित्रित नहीं हुई जिनमें आंतरिक अनुभूति की व्यञ्जना दब जाए।

यद्यपि इस ग्रन्थ का विषय पृथ्वीराज रामो आदि से भिन्न जा पड़ता है किन्तु फिर भी वीरलदेव रामो और इनमें पर्याप्त समानता है। इनके समान ही वीरलदेव रामो में गेय छंद का प्रयोग किया गया है तथा प्रेम भाव का प्राधान्य है।

मदेश रानक के अतिरिक्त उन परम्परा में जिन रानों का विशेष उल्लेख किया जा सकता है उनमें गुमान रामो, वीरलदेव रामो, पृथ्वीराज रामो, हुम्मीर रामो, विजयपान रामो और परमाल रामो ही उल्लेखनीय हैं।

गुमान रामो का प्रणयन दलपति विजय ने रिया है। ये जाति के भाट और मेवाड़ के राजा गुमान द्वितीय के नमकालीन थे। अगरचन्द नाहटा ने उन्हें भाट न मानकर तपागच्छ का कोई जैन साधु माना है। मोतीलाल मनेरिया भी ऐसा ही मानते हैं। उनका कथन है, "ये तपागच्छीय जैन साधु जाति विजय के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था पर दोषा के बाद बल पर दोलत विजय रंग दिया था।"

इसका रचनाकाल स० १७३० से लेकर स० १७६० तक के मध्य है। उन समय उत्तरी मुख्य कृति गुमान रामो की जो प्रति प्राप्त होती है वह अपूर्ण है। उसमें महागण प्रताप तक का ही वर्णन मिलता है। पर जिन रानों में यह प्रति प्राप्त है उनके द्वारा भी इसका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी ही ठहरा है।

काव्य कोशल की दृष्टि से इस कृति के मन्थन में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि यह प्रति समय-समय पर कवियों के हाथों ने नई नामों प्राप्त पन्नी गयी और अपने पूर्वजों की वंश-एक ध्वनि-राना ही बन सकी है।

उन परम्परा की द्वितीय प्रमुख रचना वीरलदेव रामो है। इनके रचयिता नन्दवि नाथ ने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। अनेक विद्वानों के मतानुसार यह गेय भांड, अथवा बालगुरु काव्यो है। किन्तु कुछ भी हो इसका रक्त-धर्म 'वीरलदेव रामो' हिन्दी में बहुत पहले से मशहूर माना जाता है। इन्हें,

अपूर्ण सब मिला कर इस ग्रंथ की १४, १५ प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनके अनुसार रचनाकाल भी भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु इसकी दो प्रतियाँ मुख्य हैं एक जयपुर की, दूसरी वीकानेर की। पहली प्रति के अनुसार नरपति नाल्ह विग्रहराज वीमलदेव चतुर्थ के तथा द्वितीय के अनुसार विग्रहराज द्वितीय के समकालीन पड़े हैं। किन्तु राजस्थान के इतिहास विशेषज्ञ गौरीशंकर हीराचन्द श्रोभा के अनुसार इसका निर्माणकाल १३५८ के लगभग है। कुछ भी हो, वीसलदेव रासो में, चार खण्डों में माभर के राजा वीमलदेव और मालवा की राजकुमारी राजमती की कथा का वर्णन है। २१५ छन्दों में वर्णित कथा का संक्षेप इस प्रकार है—

“मालव का राजा भोज अपनी पुत्री राजमती का विवाह वीसलदेव से करता है। बड़ी धूमधाम, से बिना कुछ रक्तपात हुए विवाह संपन्न होता है। एक दिन राजा रानी से बड़ाई करता है कि मेरे समान कोई नहीं। रानी कहती है, घमंड न करो बहुत से राजा तुमसे बड़े हैं और उदाहरणस्वरूप रत्नों के भण्डार घाले उड़ीसा के राजा की बात कहती है। राजा उड़ीसा-यात्रा के लिए सन्नद्ध हो जाता है। रानी उदास होती है और उसे रोकती है किन्तु वह जगन्नाथ की पूजा करने का बहाना करता है। राजा की उड़ीसा-यात्रा पर राजा के वियोग में रानी बहुत दुःखी होती है और अपने पिता के यहाँ चली जाती है। वहाँ भी वह राजा की नित्य याद देखती है। इन वियोग स्थलों का वर्णन कवि ने बड़ी सहृदयता से किया है। बस वर्ष बीतने पर वह पण्डित के हाथ एक पत्र भेजती है, जिसे पढ़ कर राजा रानी के पास लौटने का विचार कर लेता है। वहाँ की सुन्दरियाँ रोकती हैं, किन्तु वह नहीं मानता। उड़ीसा नरेश उसे बड़े आदर के साथ घन-रत्न आवि देकर बिदा करता है। वहाँ से राजा के लौटने पर मालवा में बड़ा उत्सव मनाया जाता है जिसमें भोज भी सम्मिलित होता है। इसके पश्चात् वीमलदेव राजमती को लेकर बड़ी धूमधाम के साथ अपने राज्य को चला जाता है और आनन्द से राज्य करता है।”

ऐतिहासिक दृष्टि से इनके कथानयन में भी विद्वानों को संदेह है और साहित्यिक दृष्टि से भी यह पुस्तक विशेष महत्त्व की नहीं। इसकी भाषा

अपरिमाजित और असाहिव्यक्त है, वर्णन भी वाच्यार्थक नहीं है। हाँ, राजमनी का विशेष-वर्णन अच्छा है पन्तु ऐसे स्थल कम हैं। उद्यो में भी गति और गति दोष अरे पड़े हैं। हमसे पता चलता है कि नरपति नाल विरोध प्रतिभा का यधि न था।

रचना परम्परा की दृष्टि से तीसरी महत्त्वपूर्ण कृति चन्द्रवन्दारि पुन पृथ्वी-राज रातो ही है। यद्यपि तथाना की ऐतिहासिकता और भाषा की दृष्टि से यह ग्रन्थ पर्याप्त विपदाग्रस्त हो गया है किन्तु यदि इन दोनों तथ्यों को छोड़कर शुद्ध काव्यत्व की दृष्टि से इन ग्रन्थ का मूल्यांकन किया जाए तो इन ग्रन्थ का महत्त्व इस परम्परा के पक्षों में नर्वाधिक दोन पड़ता है। भाषा के मूर्तीकरण, में, अनुसूचों की योजना में, श्रुति-वर्णन की दृष्टि में और रस-वर्णनाय के क्षेत्र में जितनी नफाता इन ग्रन्थों की मिली है उतनी सभ्यत किसी अन्य ग्रन्थों की नहीं। कवि मानव-माय के अन्तर्गत में धुन कर भाव वीचियों की गोज नाने में पूर्णत गपन हुआ है। एतना ही नहीं कना पक्ष की दृष्टि से भी उने ग्रन्थधिक नफाता की प्राप्ति हुई है। भाषा पर उनका अचूक प्रभाव भी है, उद के क्षेत्र में मन्त्राट की पद्यों से विभूषित है तो अनकारों के क्षेत्र में सहज और स्वाभाविक प्रयोग उगली रचना में देखने को मिलता है।

पृथ्वीराज रातो के उपरान्त तीन कृतियों का और उल्लेख किया जा सकता है, हम्मौर रातो, विजयान रातो और परमान रातो का। इनमें से हम्मौर रातो मार्गपर की कृति है, परमान रातो का लेखक अज्ञात है और विजयान रातो की रचना नल्लमिह के द्वारा की गई है।

वर्ण और अर्थमूर्तियों द्वारा मृज्जन कर यति-गति वाले वाछित छन्दों से अपने पात्रों के आंतरिक उद्वेलन को सशक्त रूप से मूर्त करते हुए कवि ने इतिहास और कल्पना के योग से उनके विजय, आह्लाद, अवसाद, क्षोभ, चिंता आशा-निराशा आदि के द्वारा श्रोता या पाठक के चित्त को अभिभूत करने का मन्त्र सिद्ध किया है। यही कारण है रासो की माहित्यिक जय दुदुभि का। उसकी मुदीर्घ और मुनिदिचत् परपरा अपनी छाप समेत परवर्ती रामो-काव्य में निरन्तर प्रतिबिम्बित देखी जा सकती है।

प्रश्न ३—महाकाव्यत्व की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन कीजिए।

रासो हिन्दी माहित्य का आदि महाकाव्य है और इसका रचयिता है हिन्दी का आदि महाकवि। परन्तु इस विषय पर विवेचन करने और पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य मानने से पूर्व साहित्य-मनीषियों द्वारा निर्दिष्ट इसके (महा-काव्य के) स्वरूप एवं अनिवार्य तत्वों पर विचार करना अधिक आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु हम सर्वप्रथम उन्हीं तत्वों का विवेचन-विश्लेषण करेंगे।

महाकाव्य जीवन की सर्वांगीणता का दर्शन कराता है। वह अपनी विषाद और विस्तृत परिधि में समस्त राष्ट्र और जाति की संस्कृति को आत्मगत किए रहता है और महाकाव्य की उन्नी महत्ता ही देशतर काव्य धाम्नि के आदि-काल में उसके तत्वों का विवेचन एवं विश्लेषण होता रहा है जिसे एक वाक्य में इन प्रकार कहा जा सकता है—‘महाकाव्य एक दूहाकार समाख्यान काव्य है जिसमें उच्चतर चरित्रों का वर्णन रहता है और जिसके प्रवाह में घनत्व एवं गरिमा होती है।’

यदि हम वाक्य का विश्लेषण किया जाए तो महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्व भी स्वयमेव स्पष्ट हो जाते हैं जो इन प्रकार हैं—१ कथानन्तु, २ परिध-निर्माण, ३ काव्य-प्रभावों, और ४ उद्देश्य।

अब हम उन्हीं तत्वों के आचार पर रामो का मूल्यांकन करेंगे।

कथावस्तु—कथावस्तु काव्य का मेरुदण्ड है। इसी तथ्य की दृष्टिपथ में रखते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसके लिए निम्न गुणों का होना प्रावश्यक माना है—

१. महाकाव्य की कथा इतिहास से उद्भूत होनी चाहिए।

२. उसका प्रारम्भ आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु के निर्देश में होना चाहिए।

३. उसमें क्या क्या नूतन, मनोमुग्धकारी और काल्पनिक वृत्तों का संयोजन होना चाहिए।

४. इसका विभाजन सुविधानुसार सर्गों में होना चाहिए और यह सर्ग-संख्या ८ से अधिक होनी चाहिए।

५. यह नाना प्रकार के वर्णनों से अलङ्कृत, नयनों से अभिविस्तृत, विपुलाकार और सर्वत्र निम्न घटान्तों से युक्त लोकजनप्रिय होना चाहिए।

६. उसके कथानक में सभी नाट्य तथिषों का गुफन होना चाहिए।

और यदि हम इन सभी दृष्टियों से रानों की समीक्षा करें तो कहने की आवश्यकता नहीं कि उनमें कथावस्तु सम्बन्धी ये सभी विशेषताएँ सम्मिलित हैं। इसी रूपा का आधा वास्तव्यी शताब्दी के दिनों और मज्झिम के शाक्य ऐतिहासिक और महाराज पुरोहित जी हैं। जाता ही नहीं उनकी क्या का नायक अपनी क्षमता, दया और दानवीरता में दिने में कम नहीं है।

वहाँ की रमणियों के गर्मपात हो गए, वीर वंतालगणों के मन प्रफुल्लित हुए और देवी रणचण्डी हैकारने लगी ।

केवल उनके इस तेज का वर्णन ही कवि ने नहीं किया है अपितु उसके अन्य गुणों का वर्णन भी कवि ने विन्तारसे किया है । गुर्जरेश्वर, कान्यकुब्जेश्वर और गजनाधिपति को कवि ने प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया है ।

काव्य पदावली—काव्य पदावली की दृष्टि से महाकाव्य का पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न हो, क्षुद्र न हो अर्थात् गरिमा और प्रसाद गुण से युक्त हो । कहने का तात्पर्य यह है कि महाकाव्य की भाषा अलंकारों और मुहाविरों से युक्त गम्भीर से गम्भीर तथा सरल से सरल भावों को वहन करने में समर्थ होनी चाहिए । इतना ही नहीं उसमें छन्दों का भी अपूर्व विधान होना चाहिए, यद्यपि प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द के प्रयुक्त होने तथा सर्गांत में छन्द परिवर्तन हो जाने के कारण छन्द-वैविध्य को महाकाव्य में कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं है ।

इस दृष्टि से रासो की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि रासोकार का भाषा पर अचूक प्रभाव है । वह जैसे चाहता है शब्दों का प्रवाह मोड़ देता है, हर शब्द जैसे उसके इशारे पर नाचता चलता है और भावावेग में धाराप्रवाह शब्दों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे इन कवि के पास शब्द भण्डार की कमी ही नहीं है । आवश्यकता पड़ने पर वह अरबी, फारसी के शब्दों का भी अपनी रचना में समाहार कर लेता है, परन्तु विहारी आदि के समान बहुत ग्लान्त-श्लेष या मोच-विचार के गाय नहीं । यही कारण है कि डा० नामवर सिंह के शब्दों में हम यह कहते हैं कि “भाषानुकूल भाषा के मन्द और तीव्र सौंदर्य की जिन्हें छान है ये चन्द के पाम धार-धार मडराएंगे ।”

छंद भाषा की जाति तथा भंगिमा है इसलिए चंद जैसा भाषा पर अचूक अधिकार रखने वाले कवि की छंद-भंगी स्वाभाविक है । वस्तुतः हिन्दी में चंद की छंदों का राजा कहा जा सकता है । भाव भंगिमा के नाच-माच दनादन भाषा नए छंदों की गति धारण करती चरती है और विशेषता यह कि इस चल गायत्री

दुर्द नदी में बहते हुए चित्त को कोई मोड़ नहीं गटकता । उमोनिया तो नरोत्त
के रचयिता नियसिंह मेहर ने चंद को छप्पयों का राजा कहा है ।

भाषा गौन्दर्य की दृष्टि के क्षेत्र में अलंकारों का प्रयोग भी पतित गीमा तक
 महायक होता है । चंद ने भी उस नाथन में अपने काव्य में गौन्दर्य की अभिवृद्धि
 की है । किन्तु उनके अलंकार विधान पर दृष्टि निक्षेप करते समय ध्यान देने
 योग्य है कि उनके अलंकार यत्नमाध्य नहीं हैं, वे तो ऐसे स्वाभाविक अलंकार हैं
 जिन्होंने भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति बढ़ा दी है । उनमें ऐसे अलंकारों का
 समुपन भी नहीं हुआ है जिनका लक्ष्य केवल चमत्कार उत्पन्न करना होता
 है । उनमें तो उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, उदाहरण आदि ऐसे स्वाभाविक अलंकारों
 का प्रयोग है जो अनायास ही कवि की लेखनी से निवृत्त हो गए हैं ।

उद्देश्य—साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान काव्य का है और काव्य के भीतर
 भी शीर्षस्थ पद महाकाव्य को दिया गया है । यही कारण है कि प्रत्येक मह-
 त्वाकांक्षी कवि महाकाव्य लिखने की अभिलाषा करता है, किन्तु महाकाव्य
 नाम से दिने गए अथवा बाल दृष्टि से महाकाव्य प्रतीत होने वाले सभी काव्य
 गुणों की प्रवाहमान धारा में अपना स्थान तब तक नहीं बना पाते जब तक
 उनमें कोई भगन् उद्देश्य गन्तव्य नहीं होता है । यही कारण है कि कानों के
 महाकाव्यत्व के प्रश्न पर विचार करने समय उनमें निहित उद्देश्य की देखना
 भी राज आत्मिक प्रतीत होने लगा है ।

विवरण उपस्थित करना भी नहीं है। वस्तुतः उसका उद्देश्य इन सबसे बहुत ऊँचा और महान् है। वह उद्देश्य है जातीय-जीवन में प्राण संचार करना, उसमें स्वातन्त्र्य और बलिदान का मंत्र फूँकना और वाह-बल पर आधारित जीवन मूल्यों की स्थापना करना। रासो का नायक यद्यपि अन्तिम युद्ध में विजयी नहीं होता है और पृथ्वीराज, चन्द तथा गौरी की मृत्यु के बाद ६६ वें समय में दिल्ली, अजमेर और कान्यकुब्ज पर अर्थात् प्रायः समूचे भारत पर विदेशी और विद्यर्मी आक्रमणकारियों का अधिकार हो जाता है किन्तु इससे महाकाव्य के उद्देश्य पर आंच नहीं आती और न उससे निराशा और जीवन के प्रति अनास्था की भावना का ही उदय होता है। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन गौरी के युद्ध को निमित्त बना कर पृथ्वीराज रासो में भारतीय स्वातन्त्र्य का ही मिहनाद किया गया है। वस्तुतः स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर हँसते-हँसते बलि हो जाने और देश, जाति तथा अपने व्यक्तित्व के गौरव और प्रतिष्ठा के लिए प्रतिक्षण मरने और मिटने के लिए तैयार रहने का अमर-संदेश देना ही इस महाकाव्य का महत् उद्देश्य है।

इस प्रकार से महाकाव्य की कसीटी पर रासो का अनुशीलन एवं परिशीलन करने के उपरांत हम निर्विवाद रूप से यह कह सकते हैं कि रासो एक सफल महाकाव्य है। अस्तु ।

प्रश्न ४—रासो की प्रामाणिकता पर विचार कीजिए।

रासो हिन्दी साहित्य का बृहदाकार आदि महाकाव्य है। परन्तु अभी तक इस बृहद् काव्य-ग्रन्थ की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता की गूँची सुलभने नहीं पाई है।

वस्तुतः उसकी प्रामाणिकता का प्रश्न तब उद्भूत हुआ जब बंगाल की रायन एगिप्टिक सोसायटी ने इसका प्रकाशन आरम्भ किया और तब से लेकर अब तक अनेकानेक मत प्रकट किए जा चुके हैं। इन समस्त मतों को दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है—

१. अप्रामाणिक मानने वाला पक्ष ।

२. प्रामाणिक मानने वाला पक्ष ।

अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में डा० बूनर, गौरीशङ्क हीराचंद मोन्दा, आचार्य रामचन्द्र धुस्त आदि विद्वान प्रमुख हैं । उन विद्वानों ने गनों को जिन आधारों पर अप्रामाणिक माना है उनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१ घटना सम्बन्धी ।

२ काल सम्बन्धी ।

३ भाषा सम्बन्धी ।

घटना सम्बन्धी—श्रीभा जी आदि विद्वानों का कथन है कि इनमें अनेकों ऐतिहासिक भ्रांतियाँ हैं उदाहरण के लिए रासो में दिए गए अधिपान नाम और घटनाएँ इतिहास-सम्मत प्रामाणिक नहीं होती । गनों में परमार, चान, और चौहान, क्षत्रिय अग्निवर्तीय माने गए हैं परन्तु प्राचीन ग्रन्थों एवं शिलालेखों के आधार पर ये नृपवंशी प्रामाणिक होते हैं । माय ही चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता का नाम, माता का वन, पुत्र का नाम और नामों के नाम आदि भी ऐतिहासिक शिलालेखों और पृथ्वीराज विजय में भिन्न और असंगत हैं । पृथ्वीराज की माता जनकान्त की पुत्री नहीं थी और रामचन्द्र ही जनकान्त का पुत्र नया गठौर वंशीय था । शिलालेखों में जयचन्द ही गठौराक्षत्रिय बताया गया है । इन प्रकार में श्रीभा जी जयचन्द ही पृथ्वीराज की माता एवं गयोविता नयचन्द से भी सम्बन्धित मानते हैं । इतिहास के अनुसार न तो पृथ्वीराज की माता का नाम कनका था और न जनकान्त उस समय दिल्ली का राजा था । पृथ्वीराज की पत्नी पृथ्वीराजिका भी मेवाड़ के राजा नारायण के नाम नहीं हुआ था क्योंकि शिलालेखों में वह समाप्त मिल चुके हैं कि नारायण पृथ्वीराज के उत्तराधिकारी नहीं थे । राजा के नाम भीम के पुत्र राज-नय के पुत्र होने से कि वह पृथ्वीराज के बाद पतन ही हो जाँटा रहा था । इसी प्रकार पृथ्वीराज का विवाह

आदि का वर्णन भी इतिहास विरुद्ध ठहरता है। शाहबुद्दीन द्वारा समरसिंह का वध और पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी अतिहासिक है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज के जीवन की घटनाएँ, पृथ्वीराज का दिल्ली गेद आना, मेवानी-मुगल युद्ध, नयोगिता-स्वयंवर आदि घटनाओं का उल्लेख न० १४६० के आस-पास रचित हम्मिर महाकाव्य में भी कहीं नहीं मिलता।

काल सम्बन्धी—दूसरा कारण यह है कि रामो में दी गई सभी तिथियाँ अशुद्ध हैं। कर्नल टाट के अनुसार रामो में दिए गए सबतों और ऐतिहासिक माघनों द्वारा प्राप्त सबतों में १०० वर्ष का अन्तर है। रामो में पृथ्वीराज की मृत्यु का सबत ११५८ है जबकि इतिहास में वह न० १२४८ है। जन्म रामो में न० १११५ है इतिहास में वह १२०० ठहरता है। इसी प्रकार आबू पर चालुय के आक्रमण, शाहबुद्दीन के साथ पुण्डीर युद्ध आदि की तिथियाँ भी अशुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त रामो के अनुसार शाहबुद्दीन गौरी १२४६ में पृथ्वीराज द्वारा मारा गया था परन्तु इतिहास के अनुसार १२६३ में गयलरी द्वारा उसका वध किया गया था।

भाषा सम्बन्धी—श्रीमज जी की तीसरी आपत्ति यह है कि रामो में प्रायः दस प्रतिशत शब्द अरबी फारसी के हैं। साथ ही रामो की भाषा में अनुस्वरात् शब्दों की अधिकता है। इन दोनों कारणों से भी यह ग्रंथ १६ वीं शताब्दी के आस-पास का ठहरता है।

परन्तु रामो की प्रामाणिक मानने वाले यथा मिश्रप्रभु, मोहनलाल धिष्णु-लाल पाड्या, डा० दशरथ शर्मा, आदि विद्वानों ने इन सभी आपत्तियों का उत्तर दिया है। वे ऐतिहासिक भाषियों का समाधान करने हुए कहते हैं कि रामो में ये श्रुतियाँ बगना के आधिक्य एवं अनिश्चितपूर्ण वर्णन से आगे हैं। इसके अतिरिक्त उनका कथन है कि नागरी प्रचारिणी मभा की ओर से प्रकाशित पट्टे-पत्रवालों ने इन श्रुतियों का निराकरण हो जाता है। परन्तु श्रीमज जी इन पट्टे-पत्रवालों को भी जानी मानते हैं। इस पर डा० दशरथ शर्मा ने दया पत्रिका

जिया है। अपने लम्बे और कठोर परिश्रम के उपरांत वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रामों का मूलरूप अल्पकाल या घन वह प्रामाणिक है। उन्होंने रामों को प्रामाणिक मानने वालों का उद्घन करते हुए कहा है कि रामों न तो जानी अन्य है और न उनकी रचना ही १६०० वि० के आन-पान हुई थी। पछर मित्रों हुई रामों की लघुतम प्रतियों के आधार पर घटना वैषम्य, काल वैषम्य एवं भाषा सम्बन्धी सभी शकाओं का समाधान हो जाता है। इन प्रतियों में अनित्य विषयक दृष्टिपूर्ण घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है उदाहरणतः न तो जगमें राजपूत कुलों की आत्मा के अग्निगुण्ड में उत्पत्ति का उल्लेख है और न ही पृथा का विवाह तथा शाहजहाँन नमस्मिह गुल तथा भीम नौमेश्वर पृथ्वीराज के युद्ध का ही उल्लेख है। इतना ही नहीं पृथ्वीराज और परमावर्तों के विवाह का क्या भी नहीं है।

काल वैषम्य के सम्बन्ध में मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या का उद्घन है कि रामों की तथा इतिहास विद्वत्तियों में सर्वत्र ६० वर्षों का अन्तर पाया जाता है और यह व्याख्या भी है क्योंकि पृथ्वीराज आदि क्षत्रिय राजा नन्दगीत गुप्त राजाओं के राजत्वकाल के ६० वर्षों के आनन की अपने मयन् में क्यों मिलते। इन प्रकार में मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने अन्तर मयन् की व्याख्या की है। पण्ड्य वास्तविकता तो यह है कि अन्तर मयन् की यह व्याख्या ही निराधार है और यदि उसे मयन् मान भी लिया जाए तो भी रामों की बहुत-सी विधियाँ इतिहास में भेन नहीं जाती।

भाषा सम्बन्धी प्रश्न का समाधान करते हुए मिश्रकन्धुसो का उद्घन है कि—पृथ्वी वात तो यह है कि भारत पर इन तीन में बहुत पारंगत ही मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो गये थे। निम्न और मुस्लिम पर डाला अधिकांश ही पुरातन था। अन्तर साहित्य का उद्घन यात्रा का घन व्याख्यातन न ही सर्वत्र पारंगतों के पछर उन्नी मन्त्रिण्य में प्रवेश करते लगे थे। इनके जाने का बहुत ही भाव प्रक्षिप्त है परन्तु पण्ड्यो राज में मुसलमानी घटना के साथ भाषा पर पण्ड्यो शास्त्री का प्रभाव होता भी व्याख्यात है। इतिहास प्रक्षिप्त घटना

में और भी मुमलमानी शब्द आ जाने से रासो में दस प्रतिशत शब्द अरबी फारसी के हैं। उनका कथन है कि जहाँ तक अब स्वरात शब्दों की अधिकता का प्रश्न है वह तो डिगल भाषा की विशेषता है।

परन्तु इस वाद-विवाद के द्वारा ही रासो की प्रामाणिकता का प्रश्न समाप्त नहीं हो जाता। इस पर विचार करते समय देखना तो यह है कि इसका मूल रूप क्या है, इसका रचनाकाल क्या है, इसके मूल अंश का रचयिता क्या चन्द्रवरदाई है और क्या वह चन्द्रवरदाई इतिहास-प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान का समकालीन है ? और अब हम इन सभी प्रश्नों पर विचार करेंगे।

रासो का मूल रूप—अब तक रासो के चार रूपांतर प्राप्त हुए हैं। प्रथम में लगभग एक लाख छंद, द्वितीय में दस हजार छंद, तृतीय में चार हजार छंद और चतुर्थ में दो हजार छंद हैं। इन चारों रूपांतरों की प्राप्त प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से जो प्रसंग सामान्यरूप में मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—

१. आदि पर्व ।
२. विल्ली किल्ली कथा ।
३. अन्नगपाल दिल्ली दान ।
४. पगपग विध्वंस ।
५. तयोगिता नेम आचरण ।
६. कैमास यध ।
७. पट्पटु वर्णन ।
८. फनवज कथा ।
९. घड़ी सडाई ।
१०. दान घेघ ।

इन गनी सामान्य कथा प्रसंगों के वर्णन विस्तार में भी पर्याप्त अन्तर है। उदाहरण के रूप में जहाँ छोटे रूपांतर में पृथ्वीराज दो विवाह करता है वहाँ बृहद तक पहुँचते-पहुँचते वह पूरे तेरह विवाह पर आ जाता है। इसी प्रकार से यदि छोटे रूपांतर में राजा केवल ५ युद्ध करता है तो मध्यम रूपान्तर तक

४३ श्रीर वृद्ध नर ५७ मुद्रों का गौरव प्राप्त करना है। नम्ब्याओं के अतिरिक्त अनेक नये प्रतिवृत्तों, कथाओं तथा प्रसंगों की मूर्ष्टि के द्वारा भी उनकी वृद्धि हुई है।

उन सभी घटनाओं के द्वारा रानों में उनकी वृद्धि हो गई है कि उसके वास्तविक रूप का पता लगाना असम्भव कार्य-ना प्रतीत होने लगता है। यदि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रानों के मूल रूप छांटने का किया जावे तो केनाम वध के अतिरिक्त कोई भी प्रसंग छीट नहीं जान पड़ता। यह प्रसंग भी केनाम 'पृथ्वीराज रजय' में पृथ्वीराज के मन्त्री कश्यपदान तथा पुनर्जन काव्य ग्रन्थ में प्राप्त केनाम वध सम्बन्धी छप्पयों में ही समायोजित है।

कुछ विद्वानों ने 'पुरातन काव्य-ग्रन्थ' के पृथ्वीराज सम्बन्धी छप्पयों के आधार पर अनुमान किया है कि मूल पृथ्वीराज रानों अरभण काव्य था। परन्तु इस मत के विरुद्ध तो यह भी कहा जा सकता है कि पुरातन प्रचलन ग्रन्थ में मूल पृथ्वीराज रानों के छंदों का अरभण न्यायन सुरक्षित है अतः इस मत को मानने में अनेक बाधाएँ हैं।

यद्युक्त यदि पृथ्वीराज रानों का रचयिता नर पृथ्वीराज का नमस्कारात्मक था तो प्राप्त रक्तियों में ने कोई भी उनकी कृति नहीं है।

रानों का रचना काल—यद्यपि हम सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया गया है। प्राप्त रक्तियों के आधार पर इसका प्रथम उत्तर न० १७०७ में दत्त-पति मिश्र रचित 'जसवन्त उज्जोत' में मिलता है। न० १६३५ में चौहानराजी बंशी नरेश गुप्तान तथा उनके पुत्र भोज ने आश्रय में कवि कल्याणेश्वर द्वारा रचे गए 'सुरजन चरित' नामक काव्य में उहाँ पृथ्वीराज का वर्णन पूरे एक रात में किया गया है। यहाँ पृथ्वीराज के नाम चन्द नाम भी उल्लेख कर दिया गया है। परन्तु हमें रानों का पता नहीं चलता है। हमारे मत में है कि न० १६३५ तथा अन्य पृथ्वीराज के रक्तियों को भी पृथ्वीराज रानों का रचना काल। श्री मोहनलाल तिल्लाना पण्डित ने इस विषय पर 'चन्द-चन्द चन्द-चन्द' की रक्तियों के आधार पर पृथ्वीराज रानों को न० १६३७ तक प्राप्त होता, लिख करके कहा

है। परन्तु खोज रिपोर्ट के द्वारा ज्ञात होता है कि यह कुलस्केप कागज पर लिखी हुई बहुत ही आधुनिक रचना है। इस प्रकार अकबर के शासनकाल से पूर्व पृथ्वीराज नामक किसी कवि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। और जैसा कि नरोत्तम स्वामी का अनुमान है कि अकबर की आधीनता स्वीकार करते समय मेवाड के राजकुल ने अपना गौरव बढाने के हेतु पृथ्वीराज चौहान से अपना सम्बन्ध स्थापन किया और इसके लिए पृथ्वीराज की पृथा नामक भगिनी की कल्पना की। अन्त में उन्होंने इन सबको काव्यमय रूप देकर, परंपरागत पृथ्वीराज रामो में मिलवा दिया और फिर तो अमरसिंह द्वितीय (म० १७५५-६७ वि०) के राज्यकाल तथा इसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा।

रामो का रचयिता चन्द—गुदू जन-श्रुति के होने पर भी ऐसा कोई ठोस एवं प्राचीन प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर पृथ्वीराज रामो के रचयिता के रूप में चन्द व्यक्ति का नामोल्लेख हो। पुरातन प्रबन्ध संग्रह के पृथ्वीराज प्रबन्ध में अथर्व ही चन्द वलदिय कृत पृथ्वीराज सम्बन्धी दो छन्दों का पता चलता है किन्तु उनके आधार पर यह कहना कठिन है कि ये किसी प्रबन्ध-काव्य के अंग हैं। परन्तु फिर भी इनमें उतना तो निश्चित है कि चन्द वलदिय नामक एक कवि अथर्व था जिसने पृथ्वीराज के सम्बन्ध में काव्य रचना की थी।

चन्द और पृथ्वीराज—पृथ्वीराज रामो के बृहद् और मध्यम रूपान्तरों में अनुनाम चन्द पृथ्वीराज के जन्म-मरण का अनन्व साधो था। परन्तु इतिहास के द्वारा हम घटना की पुष्टि नहीं होती परन्तु पृथ्वीराज के दरबारी कवि के रूप में चन्द वलदिय का होना अगम्य नहीं है और उसकी पृथ्वीराज विषयक काव्य-रचना के उदाहरण प्राप्त हैं। परन्तु पृथ्वीराज रामो नाम में प्राप्त पर्यवर्ती स्थापन में विनाम चन्द कृत है अथर्व चन्द में उसका तथा सम्बन्ध है इसका निर्णय करना हम समय अनन्व है। सम्भावना यही है कि चन्द की पृथ्वीराज विषयक रचनाएँ उनके बचपन तथा मोह-मूर्छों की मौलिक परम्परा द्वारा रची गयी होंगी।

ग्रन्थ में जहाँ तक ऐतिहासिक नामों के आधार पर राजों की प्रामाणिकता परचने का प्रश्न है उनके सम्बन्ध में आ० नामवरसिंह के शब्दों में इतना ही कहा पर्याप्त होगा कि पेंचन अर्नतिहासिक घटनाओं के समावेन ने ही पृथ्वीराज राजा पन्द की कृति होने के शोभ्य में वचित नहीं हो सकता । पृथ्वीराज राजा की प्रामाणिकता पर विचार करते समय यह न भूलना चाहिए कि यह काव्य यथ है इतिहास नहीं । यदि जायसी के पद्मावत की अर्नतिहासिक घटनाओं को लेकर इतना शोरगुन नहीं हुआ तो कोई आवश्यक नहीं कि पृथ्वीराज राजा पर ऐसा कोप किया जाए ।

✓ प्रश्न ५—राज्ञे के भाव पक्ष पर एक साम्याभित लेख लिखिए । ✓

तर्क विनर्क की उन्नतता में उलझा मानव कभी-कभी ही नहीं अपितु प्रायः किसी विशेष वस्तु की छाया में प्रवेश कर उनसे शौर्य को नहीं देख पाता । यह मानव की प्रादि प्रवृत्ति है कि बुद्धिवाद के झूठे भ्रम में पड़ कर हृदय की गरम स्वाभाविकता का भी वह उपमान कर बैठता है । हिन्दी नाट्य का प्रादि महाकाव्य भी मानव की इसी तर्क बुद्धि का शिकार बना है । राजा की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के विषयों में मानव विद्वानों का ध्यान उनके मान्य तोष्ठर एवं भाव-शौर्य पर गया ही नहीं । इन व्यर्थ मन की नीति के कारण उनके काव्यत्व का मोह होता दिखाई दिया किन्तु अब कुछ देर के लिए हम राजा की प्रामाणिकता के विचारग्रन्थ ग्रन्थ की छाया में प्रवेश कर उनके भाव-शौर्य पर प्रकाश डालेंगे । अस्तु ।

राज्ञे एक प्रख्यातकाव्य है और प्रख्यात काव्य में कवि कला के नाम से एक ऐसी सुन्दर सम्पत्ती का निर्माण करता है जिसका प्रभाव सुन्दर में होता है । प्रख्यात एक नाम है, सुखद विचारों की एक सतत गति । सुन्दर में सुखद विचारों का होता है, भावित्वपूर्ण नहीं । इसी प्रख्यात के प्रभाव-कार के भावपक्ष में उदात्त की विशिष्टताओं का, विशिष्ट भावित्वपूर्ण पक्षों का भी समुचित विवेचना हुआ जाना है और वह भी मान्य है कि प्रख्यात में कि उसमें जीवन के विनीत सत विचारों का विस्तार होता है कि वह ही

घन घरजै घरहरै पलक निसि रैन निधहै ।
 सजल सरोवर दिषि दियो ततघन घन छहै ॥
 जव बहल वरपत प्रेम पल्लही निरंतर ।
 कोकिल सुर उच्चरै अग पहरन्त पचसर ॥

×

×

×

कुसुमन कुञ्ज सरीर सम्मरं सलित दूभर सहयं ।
 नदरोर दादुर मोर नद्दुर वनसि वद्दरि वद्दय ॥

अर्थात् हे प्रियतम ! जब बादल बरस रहे हों, और सजल सरोवरो को देखकर मोनाग्यवतियों के हृदय विदीर्ण हो रहे हों, कोकिलों की बाणी के साथ जब प्रेम-देवता बाण वर्षा कर रहे हों, तब जाना नहीं चाहिए ।

भावपक्ष के समुचित नियोजन में रस-परिपाक की कुशल क्षमता के बिना कभी कार्य नहीं चलता । इसका मूल कारण यही है कि रस काव्य की आत्मा है, काव्य का मूलोद्देश्य ही पाठक या श्रोता के हृदय में रस का वहन कराना है, और यदि इस दृष्टि से रसों को पखा जाए तो रासों में अनुपम चित्र दृष्टिगत होंगे । यद्यपि उनमें वीर और शृङ्गार की ही प्रधानता मिलेगी, किन्तु फिर भी अन्य रसों का वहन भी हो पाया है उदाहरणरूपेण श्लोक की अभिव्यक्ति में यद्यपि रौद्र रसानुभूति नहीं हो पाती किन्तु फिर भी भावों का वर्णन तो हो ही पाया है । इसी प्रकार ने वीररस के वर्णन भी रासों में प्रचुर मात्रा में है यथा निर काटना, कुन्तो का माम गाना आदि वीररस के उदाहरण ही हैं । इसी प्रकार से भयानक रस का परिपाक भी रासों में हुआ है । विशेषरूपेण 'दूँटि-दूँटि ताण तर-ताते डंटा नाम' अर्थात् दूँट डूँट कर गाने के कारण दानव का नाम डंटा पटा वाला पद तो इस प्रकार के सुन्दरतम पदों में परिगणित किया जा सकता है । लेकिन दानव का वर्णन रासों में नहीं है और इसके लिए यदि ये ठहर किसी प्रकार का दोषाभेपण भी नहीं किया जा सकता क्योंकि वीर और दाम्य या माय भी नहीं बैठता । इसी प्रकार से कहरा और दानव रसों के कुछ चित्र भी रासों में देखने को मिल जायेंगे । लेकिन इन

गभीर रंगों का परिष्कार करते समय गहवों के प्रणेतों की वृत्ति उनमें सीन नहीं हुई है। वह तो चीर और शृङ्गार के प्रमगो में ही रमी है और उन दोनों घोषों में कवि ने अद्भुत नफनता की प्राप्ति भी की है। शृङ्गार के वर्णन में यदि कवि रंग का मन्त्रिह्न कर भावों की उत्तेजना बटा देता है तो चीर रंग का परिष्कार इतनी सफनता में हुआ है कि भुनाएँ पटक जाती है। चीर रंग का वर्णन और युद्ध का वर्णन जहाँ उही भी कवि ने किया है वही उमका काव्य निद्र ताक्ष्य बन कर अपने गान्धर्व में और भी निग्रर गया है। इसी अभिनय की पुष्टि के लिए एक उदाहरण देना—

मनं कूट कूटं ब्रह्मे मार नार चमकै चमकै करार गुधारं ।
भभकै भभकै ब्रह्मे रक्त धारं सनकै सनकै ब्रह्मे वान मारं ॥

इसी प्रकार ने शृङ्गार रंग के निग्रग में कवि ने उनके दोनों पक्षों दया सयोग और शियो ता मुग्ध निर्याह किया है। वियोग की परिस्थिति में नायिका की मनोरंजा के प्रमिग विभाग को उन्होंने अत्यन्त सफनतापूर्वक चित्रित किया है। पद्मावती की सिंह दगा की जो वीरानपूर्ण अभिनय की गई है उमका एक दिव देना—

मंदेश मुनत आनन्द बैन ।
उभगीय घाल मनगथ्य सैन ॥
तन चिस्ट चीर डारयो डनार ।
मंजान नयक नव मत सिंगार ॥
भूपन संगाय नगन्धि अनूप ।
सजि नैन मनो मनगथ्य भूप ॥

इस स्थिति पर हमारे लक्ष्य के समुदाय शायद ही लक्ष्मी के पद्मावती नामक शायर या कवि की स्मृति का लक्ष्य है जब उमकी नायिका भी प्रिय पालन के साथ ही प्रान के हों या अतुल्य बनते हैं। लक्ष्मी ने उमकी लक्ष्मी की शक्ति का लक्ष्य का दिव रंग प्रकाश दिया है—

हुलसे नैन दरस मदमाते ।
 हुलसे अधर रग रस राते ॥
 हुलसा वदन ओप रवि पाई ।
 हुलसि द्रिया कंचुकि न समाई ॥
 हुलसे कुच कसनी वद टूटे ।
 हुलसी भुजा, बलय कर फूटे ॥

वस्तुतः रस-परिपाक के क्षेत्र में चन्द ने अद्भुत सफलता की प्राप्ति की है, विभाव अनुभाव और सचारी भावों की अनुकूल योजना उपस्थित की है। मृत्यु या वन्दी होने पर रानियों के करुण विलापमय चित्र खींचने में कवि का हृदय भावुक हुए बिना नहीं माना है। फलतः हमें कहना पड़ता है कि रस-योजना के क्षेत्र में रासो के प्रणेता को अद्भुत क्षमता प्राप्त थी।

समग्रतः हम कह सकते हैं कि रासो का भावपल अपने आप में अत्यन्त समृद्ध है। जीवन के विविध क्षेत्रों और उनमें भी मार्मिक स्थलों को चुनने की कवि में क्षमता है। प्रकृति निरीक्षण, पङ्क्तु वर्णन और रूप वर्णन में यद्यपि कवि परम्परा पालन का निर्वाह किया गया है किन्तु फिर भी उनमें मौलिक उद्भावनाओं की कमी नहीं और रस-योजना के क्षेत्र में तो उसने कमाल ही कर दिया है।

प्रश्न ६—प्रकृति-निरीक्षण की दृष्टि से चंद्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो की विवेचना कीजिए।

विश्व साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रत्येक भाषा के काव्य में प्रकृति चित्रण की प्रति महत्वपूर्ण स्थान की प्राप्ति हुई है। इतना ही नहीं किन्तु ही स्थान तो ऐसे हैं जहाँ पर कवि ने मानव को छोड़ कर केवल प्रकृति का चित्रण करना अधिक उत्तम समझा है। उसके आन्तरिक रूप पर मनो-मुग्ध हो अपने मानव-मन पर उसके सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। अदम्य वेग से बहती हुई नदियाँ, लल्लाहने और हरे-भरे वृक्षों, पौधों, पशु, पक्षियों, गन्ध, प्रभाव व मध्या आदि में तादात्म्य स्थापित कर मनोविकृत गुण की प्राप्ति की

है। हमारे प्राचीन साहित्य में मन्त्रों के कवियों वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास, भारवि आदि को प्रकृति का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। इसका एक स्वाभाविक कारण यह है कि मानव अथवा कवि प्रकृति की गोद में जन्म लेता है और प्रकृति के प्राणन में ही पनपा-बढ़ता है। फिर भला वह प्रकृति के चार चित्र क्यों न अंकित करे ? एक अन्य कारण यह है कि प्रकृति गुप्त में और उन्नाम में, दुःख में और निराशा में नरैव मानव के मान रही है, फिर कवि जो मानव भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है, प्रकृति को कैसे विस्मृत कर सकता है।

कविवर चन्द्रवंशदेव ने भी अपने काव्य में प्रकृति का चार अंगन किया है किन्तु उनका प्रकृति-वर्णन सस्कृत कवियों की शैली पर ही आधारित है। उदाहरण के लिए पद श्रुति वर्णन को लिया जा सकता है। धूम्राक्ष राजा गोहान पत्नीज जाने के लिए तैयारियाँ कर रहे हैं, विदा लेने के लिए वे इच्छिनी नगी के पास जाते हैं। किन्तु यह अवनत वनत श्रुति का है अतः नगी वनत श्रुति का प्रभाव और आकर्षण का वर्णन करके राजा को रुक जाने के लिए बाध्य कर देती है। यह कहती है—हे प्रिये ! जब पद्व और मान फूल गए हों, और धा गंगा हो, रात की रोपता में कोई कमी न हो, ऐसे में क्या कोई अपनी पत्नी को बिगड़िखी बना कर जाता है ? इसी प्रकार राजा अन्य चार रातों के पास चार विभिन्न श्रुतियों में आशा लेने को जाते हैं और चारों ही रातियाँ प्रकृति का ऐसा रूप प्रस्तुत करती हैं कि राजा को रुकने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इन प्रकार की परम्परा में कुण्डी नगी के द्वारा लिख गया गीत श्रुति का वर्णन यति मुन्दर बन पड़ा है। कुण्डी नगी का कवन है—

धीन तस्मिन् तन तपै नित घाय ख्यन गिन
निमि चारो परगलै नहि फलो नीन अरध दिन ।

✓

×

∴

भुनि कंन भुमति मंयनि विपनि प्रीतन गेह न लक्षित ।

दिशाओं का घयकना, रक्त का सूखना आदि वर्णन कर भावावेश में प्रियतम को जाने देना नहीं चाहती। वस्तुतः इस प्रकार के वर्णनों के द्वारा कवि ने इस वान का परिचय दिया है कि विभिन्न ऋतुओं का मानव हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है और इसीलिए डा० विपिन बिहारी द्विवेदी ने लिखा है—
 “क्या के इस प्रसंग में षट् ऋतुओं का रोचक वर्णन पढ़ने को मिलता है। यद्यपि उद्दीपन को ले कर ही इसकी रचना हुई है परन्तु यह रासोकार के ऋतु विषयक ज्ञान, प्रकृति निरीक्षण, मानवीय व्यापारों की अनुरजना और वर्णन कौशल का परिचायक है। * * * रासो का प्रस्तुत ऋतु वर्णन सूफी कवि जायमी के पद्मावत के षट् ऋतु वर्णन के समान ईश्वर से मिलन और वियोग की प्रतीकता के मित नहीं, भक्त कवि तुलसी के मानस के किष्किन्वा काण्ड की चर्चा और शरद् के वर्णन की भाँति नीति और भक्ति आदि का उपदेशक नहीं, राठौर नरेश पृथ्वीराज के खण्डकाव्य 'बेलि किम्बन खमरणी रो' के ऋतु वर्णन की तरह अलंकारों से शोभित, उसका हुस्ना और रूप नहीं फिर भी उसमें अपना ढंग और अपना आकर्षण है तथा मुख्य कथानक से उसे जोड़ने का कवि-चातुर्य परम सराहनीय है।”

हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण कई प्रकार से हुआ। कही इसके सौन्दर्य का वर्णन किया गया तो कही उनका मानवीकरण हुआ, कही अर्थ-ग्रहण और विग्व-ग्रहण के रूप को लिया गया तो कही प्रकृति में नाम परिगणात्मक शैली को ही अपनाया गया। पृथ्वीराज रासो में यद्यपि हूँदने से इन सभी प्रकारों के एकाध उदाहरण मिल जायेंगे किन्तु मुख्यतः प्रकृति के तीन रूप आनन्दन रूप, उद्दीपन रूप और अलंकरण रूप ही देराने को मिलेंगे और आगामी पक्तियों में हम इनही तीनों रूपों के मध्य में विवेचन प्रस्तुत करेंगे। अस्तु।

आनन्दन रूप में प्रकृति वर्णन—आनन्दन रूप में प्रकृति का चित्रण उस अवस्था में होता रहता है जब प्रकृति कवि के लिए साधन न बन कर साध्य बन जाया करती है। जब यदि अपनी मूर्धम पर्यवेक्षण शक्ति के द्वारा प्रकृति का सदा सत्य चित्रण होता है। सम्पूर्ण वाक्य में इस रूप में प्रकृति वर्णन

मोर सोर चिहूँ ओर । घटा आसाढ़ वधि नभ ॥
 वक्र दादुर भिंगुरन । रदन चातिग रंजत सुभ ॥
 नील वरन वसुमतिय । पहिर आंभ्रन अलकिय ॥
 चंद वधू सिर व्यज । धरे वसुमत्ति सु राज्जय ॥
 वरपत वूँढ घन मेघसर । तव सुभिरै जद कुंआरि ॥
 मनमथ्य करि ॥

अलंकार विधान के रूप में प्रकृति-वर्णन—अलंकार विधान के रूप में प्रकृति-वर्णन उम अवस्था में हुआ करता है जब कवि किसी वस्तु या व्यापा की तुलना करते समय प्रकृति से उपमानो का सचयन किया करता है । जब कवि को मज्जुल चंद्रमा सोदय से पूर्ण लगता है, नायिका के शरीर के विभिन्न अवयवों को देख कर जब उसे विभिन्न प्राकृतिक उपकरण याद आ जाते हैं पृथ्वीराज रासो में प्रकृति का इस रूप में चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है निम्न पंक्तियों में इसी प्रकार का एक चित्र देखा जा सकता है—

चंद वदनि मृगनयनि । मोह आसित कोदण्ड वनि ॥
 गग मंग तरलति तरग । वैनी भुअंग वनि ॥
 कीर नास भ्रगु दिपति । दसन दामिक दारमकन ॥
 द्वीन लक श्रीफल अपीन । चपक वरन तन ॥

×

×

×

आसा महीप कव्वी । नवनव कितीय संग्रह ग्रथ ॥
 सागर सरिम तरगी । वोहथ्य उत्तिय चलिय ॥

जबि ने एक स्थान पर तो प्रकृति को पावन ऋतु के रूप में ही चित्रित कर दिया है । यथा—

भरि पावस मिर प्राहारं । वरपत रुद्धि धरं द्विद्वार ॥
 पग विज्जुल जोगनि मिरधारं । वग्गी सौ जम्बू परिवार ॥
 कटि कूक करें जिनके फिरय । मनौ इन्द्रवधू घर में रचय ॥
 भमभकै मपग्गीन पग्गनि वजै । मुनि वदनि भिंगुर सहलजै ॥

लपटांड सुसोक्रिय चेलतरं । पर रभन रभन रभ चरं ॥

अकुरी घट्टि थैलि सुधीर वर । वहि पावस झार झरं ॥

अनकार-योजना कवि का मुख्य लक्ष्य नहीं है पद्यत रस रूप में प्रवृत्ति निग्रह अधिक मात्रा में दृष्टिगत नहीं होता । वस्तुतः चन्द्रवरदत्त के यहाँ तो प्रवृत्ति-निग्रह अपने महज स्वाभाविक रूप में ही हुआ है और हिन्दी साहित्य के आदि काल में प्रवृत्ति का ऐसा रस्य चित्र प्रस्तुत कर देने में तो कवि की नफनता और भी अधिक बढ़ जाती है ।

प्रश्न ७—रस-योजना की दृष्टि से रामो की समीक्षा कीजिए ।

रस काव्य की आत्मा है । जिस प्रकार तो मानव जीवन में बाह्य उपकरणों के महत्व के नाश ही नाश प्राणतत्त्व अर्थात् आत्मा को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है ठीक उसी प्रकार से काव्य में रस को । यही कारण है कि सम्पूर्ण साहित्य-शास्त्र में अनेक सम्प्रदायों यथा श्रवण सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय व वयोक्ति सम्प्रदाय आदि के उपरान्त भी रस सम्प्रदाय ही सर्वप्रमुख स्थान का अधिपति हुआ ।

रसो के प्रयोजन ने अपने काव्य प्रप में विविध रसों की समुचित योजना की है किन्तु उनकी मुख्य दृष्टि थीर एवं शृङ्गार ही थीर ही रही है । प्राणामी पश्चिमों में एक इन दोनों रसों का विस्तार से उल्लेख करते हुए अन्य रसों की विवेचना भी प्रस्तुत करेंगे । अन्तु ।

रसो मनेगे वीरगायनक काव्य में भी रस योजना का प्रदान नहीं करना पड़ता । ये स्थल अपने आप ही हमारे सामने आने रहते हैं और हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं । मानस, उद्योग, अनुभाव और नकारिका भी रसों की उपायो महित योजना और रस विज्ञान की दृष्टि अपनी उत्तम भविष्य भाग हमसे को भी प्रभावित करती है । कुछ स्थल उचित—

न गे गज मट मनी घन भद्र । चितार फितार भद्र सुर नद ॥

तुरंग महीन पदक लमान । रसकिय पाप तान मुक्तान ॥

चमकंत तेज सनाह सनाह । करें धर पद्धर राह विराह ॥
 फलक्कत टोप सुटोप उतग । मनौ रज जोति ज्योत विहग ॥
 (आदि पर्व)

× × ×
 उट्टि राज प्रथिराज वाग मनो लग वीर नट ॥
 कटत तेग मन वेग लगत मनो वीजु भट्ट घट ॥
 थकि रहे सूर कौतिक गगन,
 रंगन मगन भड शोन धर ।
 हृदि हरषि वीर जगो हुलसि,
 हुरेउ रगनव रत्त वर ॥

(पद्मावती समय)

रामो में प्रवाहमान वीर रस-पूर्ण धारा की एक सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि उसके नायक का चित्रण साहित्य-मनीषियों द्वारा निर्धारित चारो प्रकारें युद्ध, दान, दया और धर्मवीर के रूप में चित्रित हुआ है। युद्ध करने और सैन्य संचालन में तो वह इतना दक्ष है कि उनकी नमता किसी से भी नहीं जा सकती। जिस पीछता से वह तलवार निकालता है उस समय ऐसा प्रती होता है मानो आकाश से बिजली दूट पड़ी हो। स्वमत पुष्टि के लिए निम्न उदाहरण देया जा सकता है—

वज्रिय घोर निसाँन रान चौहान चहु दिसि ।
 सकल सूर सामत समरि बल जंत्र-मंत्र तिसि ॥
 उट्टि राज प्रथिराज वाग लग मनो वीर नट ।
 कटत तेग मन वेग लगत मनो वीज भट्ट घट ॥

इसी प्रकार ने दानवीर के रूप में नझाट पृथ्वीराज का चित्रण अनेक स्थानों पर हुआ है। इनका कारण यह है कि हिन्दू धर्म में दान की बड़ी महिमा बताई गई है। फिर बना हिन्दू नझाट महाराज पृथ्वीराज का इस रूप में चित्रण क्यों न होगा ? एक चित्र देगिए सितना गुन्दर बन पछा है—

करि सनान गगोद कह द्विय सुगाह दस दान ।

दस तोला तुलि दस द्विय अन्नदान अपनान ॥

केवल दानवी-श्रीर युद्धवीर के रूप में ही नहीं श्यामी-श्रीर धर्मवीर के रूप में अपने नायक की चित्रित करने में भी नेत्रक को पर्याप्त सफलता की प्राप्ति हुई है। इन क्षेत्र में कवि की सफलता का एक कारण तो उनकी अपनी पुण्यलता ही है किन्तु उनके साथ ही साथ एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह है कि उनके नायक का चरित्र ही हम प्रकार के गुणों ने पूर्णतः बना हुआ है। यह उनके चरित्र की ही विशेषता है कि उसने चौदह वा-चक्षाई करने वाले अपने प्रवल शत्रु साहाय्यहीन को हर बार धमा करने के साथ ही साथ सम्मान सहित उसे सुवन लिया और आदर के साथ उनके राज्य को भिजवाया।

अनेक प्रकार हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि कवि को वीर रस का निरूपण करने में पर्याप्त सफलता की प्राप्ति हुई है।

वीर रस के समान ही जिम अन्य रस का व्यापक प्रयोग इन गद्यों में देखने को मिलता है, वह है शृङ्गार रस।

यद्यपि वीररस प्रधान काव्य होने, युद्ध की भाँकाट, गन्गाट के शौर्य आदि के वर्णन के कारण इस प्रकार के प्रयोगों की आवश्यकता के लिए कोई विशेष स्थान नहीं था किन्तु फिर भी इस रस का अन्य प्रवाह कवि की पुण्यलता का एक स्पष्ट प्रमाण देता है। कवि की मदने वाली विशेषता इन दान में इतिहास होती है कि उसने वीर रस पूर्ण स्थानों में भी शृङ्गार की समुचित योजना की है। एक निम्न देखिए—

रासो में शृङ्गार-रस की योजना करते समय कवि ने इसके दोनों उपविभागों—मयोंग और वियोग—की ओर भी पर्याप्त ध्यान रखा है ।

सयोंग शृङ्गार के क्षेत्र में कवि ने रूप-सौन्दर्य, वय सन्धि और नख-शिरा वर्णन की सुन्दर योजना की है । इन सभी वर्णनों के क्षेत्र में रासो के प्रणेतों को इतनी सफलता की प्राप्ति हुई है कि उनके श-द-चित्र हमारे सामने चल-चित्र की तरह नाच जाते हैं । रूप-सौन्दर्य के अन्तर्गत यदि कवि ने वस्तुगत, अलंकारिक और वामनात्मक सभी प्रकार के रूपों का संयोजन किया है तो नख-शिरा वर्णन में कल्पना की विशालता, मूक की विविधता इतनी बड़ी-बड़ी है कि उनके द्वारा शीघ्र ही रीतिकालीन काव्य का स्मरण हो आता है । एक चित्र देगिए—

नयननि कज्जल रेख तिकख तिकखन छवि धारिय ।
 श्रवणनि सहज कटान्छ चित्तरूपन ठान ठारिय ॥
 भुज मृणाल कर कमल उरज अंगुज कालिय दल ।
 जघ रभ करि रपग गमन दुति हस करि छल ॥
 देव अरु जकिख नागिन नरिय गरहि गर्व दिखवन नयन ॥
 इछिनी इकिख लज्ज सहज किति मक्ति कविय वरन ॥

उक्त वर्णन में कवि ने जिन-जिन अंगों का वर्णन किया है उनमें अंगों के साथ उनके कार्य व्यापार का भी कितना अनेकपूर्ण वर्णन है । 'तिषल तिषलन छवि धारिय' और 'भुज मृणाल कर कमल' में कवि ने कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर दिया है ।

इसी प्रकार वे वय सन्धि के अंगों का अनाव भी रासो में नहीं है । पद्मावती की वय सन्धि की अवस्था के सौन्दर्य का निश्चय कवि ने पित्तनी सजीव और मौलिक उद्भावनाओं के माध्यम से देगिए तो सही—

मनहुँ उला ससिभान, उला नोलह सो वग्निय ।
 वाल पैम ससि वा समीप, अग्नित रस पिग्निय ॥

विगंमि कमल सिंग भमर बैन पजन मृग लुटिय ।
 हीर कीर प्ररु विच मोति नप सिप अहि घुटिय ॥
 छत्रपति गयट हरि हंस गति विह वनाय मचै सचिय ।
 पदमनिय रूप पटुमात्रतिय मनहु काम कामिनि रचिय ॥

एन छन्द के विशेषण से ज्ञात होता है कि कवि ने 'बाल बैन मति ता समीप' आदि वाक्यों से क्या मन्त्रि का एक पूर्ण चित्र उतारने का प्रति मुन्दर प्रयास किया है ।

नयोग शृङ्गार के चित्र कई स्थानों पर अत्यन्त सूक्ष्म हो गए हैं और अदलीलता की सीमा को न्यून करने लगते हैं किन्तु ऐसे चित्रों की मन्त्रि अत्यन्त ही है । अधिकांश स्थलों पर तो नैसर्गिक भावना के ही दर्शन होते हैं ।

शृङ्गार रस का रम्य उपविभाग चियांग उगुन हुआ करता है । अगुन भावों की जितनी तीव्रता इन अदलील में हुआ जाती है उतनी जितनी अत्यन्त अदलील में नहीं । इसलिए विश्व की प्रत्येक भाषा के साहित्य में इस भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । महाकवि मन्त्रवन्द्याई के यहाँ भी इन भावना के सुन्दर चित्रों का अगुन हुआ है । साहित्य मनीषियों ने विश्व के चार प्रकार बताया है—१. पूर्वगम, २. मान, ३. प्रयास, ४. रम्य और इन सभी प्रकारों के चित्र रसों में देखने को मिल जायेंगे । जो प्रकार ने विशेष की पत्रि-स्थिति में साहित्य की मनोरमा के अनित्य विधान को भी उगुनने मन्त्रवन्द्याई निरति किया है । अदलील की विश्व रसों को जो मन्त्रवन्द्याई अभिव्यक्ति की गई है उसका एक चित्र देखिए—

मंदेश सुनत आनद बैन ।
 उमगीय बाल मनमुग्ध बैन ॥
 तन निवट सीर जल्लो उतार ।
 मंजान मयक नय सन सिंगार ॥
 भूपन मगाय नप निर अगुन ।
 सजि नैन मनो मननअर भूत ॥

इस स्थल पर हमारे नयनों के सम्मुख बरबस ही जायसी के पद्मावत नामक नायक का वह चित्र उपस्थित हो जाता है जब उसकी नायिका भी प्रिय आगमन के संदेश पर इसी प्रकार के हर्ष का अनुभव करती है। जायसी ने उसकी तत्कालीन शारीरिक अवस्था का चित्रण इस प्रकार किया है—

हुलसे नैन दरस मदमाते ।
हुलसे अधर रग रस राते ॥
हुलसा वदन ओष रवि पाई ।
हुलसि हिया कंचुकि न समाई ॥
हुलसे कुच कसनी बढ टूटे ।
हुलसी भुजा बलम कर फूटे ॥

वियोगावस्था में मयोग के सभी मुग्गदाई उपकरण दुःख के कारण बन जाया करते हैं। जिन पदार्थों के द्वारा मयोग में सुखराशि की उपलब्धि हुआ करती थी वही किम प्रकार में विपावत प्रभाववाले बन गए हैं, इसका एक सुन्दर उदाहरण रासो में देखिए—

वही रत्ति पावस्म वही मधवान धनुष्य ।
वही चपल चमकंत वही वगपत निरप्यं ॥
वही घटा घनघोर वही पप्पीह मोर सुर ।
वही जमी असमान वही रवि मसि निसि वासुर ॥
वेई अकास जुगनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय ।
सजोगि पचपति कत विन, मुहि न कछू लगगत रलिय ॥

रासो-प्रणोता के विरह वर्णन में एक ध्यातव्य बात यह है कि उसने केवल नायिकाओं के विरह का वर्णन ही नहीं किया है अपितु नायक पृथ्वीराज को भी विरह के प्रभाव से युक्त दिखाया है। 'शशिवृत्ता समय' में पृथ्वीराज पावसा ऋतु में शशिवृत्ता के सौन्दर्य का ध्यान करके उसके विरह में व्याकुल चित्रित किए गए हैं।

रासो में अन्य रसों के चित्र भी सुन्दर बन पड़े हैं यथा गीत रस के प्रमग

में कवि ने सागरम्पक के माध्यम ने अनेक श्रेष्ठ योजनाएँ की हैं। एक प्रसंग हम प्रकाश है—युद्ध रूपी विषम वस्तु प्रारम्भ हो गया, शास्त्र-बल रूपी वेदपाठ होने लगा, हाथी, घोड़ों और नरों का हवन होने लगा, शीघ्र कटने के रूप में स्वस्तिवाचन आहुति दी जाने लगी, उन हवन-कुण्ड का क्रोध रूपी विस्तार हुआ, कीर्ति रूपी मण्डप तना था, गिद्ध-मिद्ध चैताल रूपी दर्शक थे, किन्नर, नाग, तुषक और अप्सराएँ गान कर रहे थे, इन युद्ध रूपी वस्तु में वीरों की मुक्ति रूपी तत्व के भोग की प्राप्ति हुई

विषम जग्य आरम्भ । वेद प्रारंभ सस्त्र बल ॥

हैं गै नर होमिये । शीघ्र आहुति स्वस्ति कल ॥

क्रोध कुण्ड विस्तरिय । किञ्चित् मडप करि मडिय ॥

गिद्धि मिद्धि चैताल । पेपि पल नाकृत छंडिय ॥

तुम्बर सुनाग किन्नर सुचर । अच्छरि अच्छ जु नाचही ॥

मिलि दान अस्म अप्पन जुगति । भुगति भुगति तन पावही ॥

वीरमत्त का प्रसंग पृथक् नहीं बरन युद्ध के अन्तर्गत ही आता है। योग-नियों या घृगिर पीना, गिद्धों का चिन्ताना आदि स्वाभाविक दृष्यों या इनमें चित्रण पाया जाता है

पत्र भरे जुगिगनि रुधिर निधि मंन ठकारि ।

नन्यो ईस उमया सहित रुंठ माल गल धारि ॥

श्वेतल रूप ने भयानक रक्त का पणिपाय दृष्ट दानव के प्रसंग में मिलता है। 'दूध' रक्त मनष्यों को पाने पाने दुष्ट दानव ने नारा अजमेर नगर उगाड़ आता। उमरी भय में उन नगर के समीपस्थ वन में बिनी जीव का प्रवेन न था और दिशाएँ भी मूल्य हो गई थी, उमरी घोर हिमज्वाला के आगे मानव तथा अन्य जीवों की त्रास वर्ण, मित्र नदून क्षिप्त शत्रु भी भाग गये हुए थे तथा

मो दानव अजमेर वन । रणो दीक्ष घन अंत ॥

सुन्न दिमानन जीव हो । दिन थायर जग गत ॥

तद् सिंघ न म्रग न पपि वन । दिसि सून भई डर जीव घन ॥
तिहि ठाम गजं वर वाजि नन । तिहिं नामन सिद्धय साधकन ॥

आश्चर्य पैदा करने वाले अर्थात् अद्भुत रम के स्थल भी रामो में अनेक हैं । आपवसा मनुष्य का मृत्यु के उपरांत अमुर हो जाना और अमुर का आमुरी स्वभाव-वश मनुष्यों को डूढ़ डूढ़ कर खाना, वीरो का वशीकरण, देवी की मिद्धि और साक्षात्कार, गडे खजाने से दैत्य और पुतली का निकलना, मन्त्र-तन्त्र की विलक्षण करामातें, वरुण के वीरो को उछल-कूद, वीर-गति पाने वालों का अप्सराओं द्वारा वरण, आत्माओं का भिन्न, लोक-वास्त, कबधो का युद्ध आदि इसी प्रकार के प्रसंग हैं । कवि ने इनका वर्णन इस प्रकार किया है जैसे ये अघटित घटनाएँ न होकर सत्य और साधारण हो ।

वात्सल्य और शोक के प्रसंग रामो में इन्ने गिने ही हैं परन्तु इतना होने पर भी गुन्दर वन पडे हैं । उनका निम्न पद, जिसमें पृथ्वीराज के वात्स्य जीवन की भाँगी प्रस्तुत की गई है मूर के दिनी भी बाल-वर्णन से सम्बन्धित पद से टकर ले सकता है—

अगुरिनि लगि रागि चलत लाल । मर मद्धि उठत गजहंस बाल ॥
मिलि बाल-जाल कवि रही कैलि । बढ रही दूढ़ जनु चीज बेलि ॥

शोक अर्थात् करुण रस के प्रसंग रामो में कई हैं यथा कमधज्ज नरेश के भाई बालुकाराय की मृत्यु पर मशुम स्वप्न देयने के उपरांत उसकी स्त्री का विलाप, कालीज-युद्ध में प्रसंग सामतो के मारे जाने पर शोक, गजनी के कारा-गार में बंदी पृथ्वीराज का नेत्र-विहीन किए जाने के उपरांत पश्चात्ताप तथा अन्तिम युद्ध का परिणाम श्रीमद्द्र द्वारा नुनसर कवि का दुःख इसी प्रकार के प्रसंग हैं परन्तु करुण रस सबसे प्रधान स्थल माली होने वाला दृश्य है जो इतना शांत और गम्भीर है कि हृदय पर एक दीनराग त्याग का प्रभाव डाले बिना नहीं रहता ।

हास्य के स्थल रामो में एकाग्र ही हैं और वह भी बाली और वेश के

कारण ही उद्भूत हुए हैं। चान्दकुब्जेश्वर के दरबार में महाराज पृथ्वीराज और चन्द्रप्रसाद के प्रश्नोत्तरों में इसी प्रकार का हास्य उद्भूत हुआ है।

वीरगाथाकाव्य होने के कारण घात रण का रामों में प्रायः अभाव ही पाया जाता है और यौर रण का विरोधी होने के कारण भी उनमें निर्वेद की ध्वजना के लिए अवसर नहीं है। फिर भी इन रण का भरोसा करने वाले दो प्रसंग पाए जाते हैं—एक तो दृढ़ दानव की कठोर तपस्या का और दूसरा दिल्लीश्वर अलकपाल का वैराग्य। किन्तु वास्तव में देखा जाए तो इन स्थलों को भी घात रण का विधायक नहीं माना जा सकता क्योंकि दृढ़ ने जीवन मुक्ति के हेतु तपस्या नहीं की थी और अलकपाल का वैराग्य मान्य नहीं था, ये सर्वत्र त्याग पर विराज हुए परन्तु उन त्यागी हुई शक्तु की प्राप्ति के हेतु फिर भुके, गुद दिया, पराजित हुए, तब पुनः तपस्या करने लगे गए।

परिमिश्रित प्रेम में नयनों के एकराग उद्रेक रंगने की निद्रि भी रामोकार ने कई स्थलों पर विनिम्न प्रसंगों में दिखाई है। रणोत्तर दरबार में छद्मवेशी पृथ्वीराज को पहचान कर मुद्गरि दानी कर्णद्विगी ने लज्जा के घूंघट चीन दिया परन्तु चन्द्र के दमने ने मुग्ध ही उसे पलट दिया। इस घूंघट गोमने और बन्ध करने के व्यापार ने दरबार में नवम ध्वजद्वार कर दिए। किन्तु इन प्रकार के प्रसंगों से राज्य में उन चान्दका का मनार नहीं हो पाया है जो अन्त में एकदम आनन्दविशी हिमालय उत्पन्न कर लगे। परन्तु ऐसे प्रसंगोंमारे मन्त्रिण की उमत्तन को करने हैं किन्तु हृदय में किसी प्रकार की रण-भाग का मनार रंगने में सहायक नहीं हो पाते।

अन्त में कहा जा सकता है कि रम-चोख्का की दृष्टि से रामों के प्रमेता को वर्णित सकलता की प्राप्ति हुई है।

अन्त में—भावा, हन्ध और अलकपाल की दृष्टि से पृथ्वीराज रामों का मूर्च्छास्त कीजिए।

अन्त में

कला पक्ष की दृष्टि से रामों का मूर्च्छास्त कीजिए।

यद्यपि यह सत्य है कि काव्य की अधिकांश श्रृंखला भावों की उत्कृष्टता पर निर्भर होती है तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि कला पक्ष के अभाव में भाव पक्ष की सत्ता स्थिर नहीं रह सकती । चाहे किसी कवि के भाव कितने ही स्तुत्य हो जब तक वह भाषा अर्थात् कला पक्ष का आश्रय लेकर उन्हें अध्येता के समक्ष प्रस्तुत नहीं करता तब तक उसका अस्तित्व निरर्थक है । अतः यह निश्चित है कि काव्य में भाव पक्ष के समान ही कला पक्ष का भी अति महत्वपूर्ण स्थान है ।

कला पक्ष की दृष्टि से विवेचना करते समय तीन बातों की ओर अधिक ध्यान रखना पड़ता है—भाषा, छंद और अलंकार की ओर । और रामो की समीक्षा करते समय हम इन्हीं तीन बातों को मुख्यरूपेण दृष्टिपथ में रखेंगे ।

भाषा—रामो की भाषा की अनेकरूपता के नम्यन्व में अनेक मत प्रचलित हैं यथा—(१) इस महाकाव्य की भाषा अपभ्रंश है । (२) यह राजम्यानी (डिंगल) की रचना है । (३) पृथ्वीराज रासो ब्रजभाषा (पिंगल) की रचना है । (४) इसमें नाना भाषाओं का मिश्रण पाया जाता है । किन्तु इन सभी मतभेदों के होते हुए भी यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि रासो की भाषा भावानुगामिनी है अर्थात् वीर भावों को अभिव्यक्त करने में जहाँ वह अत्यन्त प्रोज-पूर्ण हो जाती है वहाँ कोमल भावों को अभिव्यक्ति के समय अति मधुर और 'प्रमाद पूर' । उदाहरण के लिए कोमल पदावली ने युक्त निम्न चित्र को देखा जा सकता है जहाँ कवि ने नायिका पद्मावती के रूप-माधुर्य का वर्णन किया है—

वैस्या वेद्धित भूप रूप मनसा शृङ्गार हारावली ।
 सोयं सूरति लच्छि अच्छित गुनं वेली मुकामावली ॥
 का वनी उक्ति जुक्ति मनय त्रैलोक्ययं साधमं ।
 मोयं बाल तिरत्त एष्ट विद्रमं कामोद जोगे सर ॥
 रूप नदि कटाच्छ कूल दृष्टी भायं तरंगं वरं ।
 हायं भाव ति मीन प्रामित गुन सिद्ध मन भंजनी ॥

सोचं जोग तरंग रुषं ति धरं त्रैलोक्य ना ता नमं ॥

सोय साह महावद्रीन प्रहियं अनग क्रीडा रन ॥

इस पद में कवि ने द्वित्रयो, नयुक्ताशरो तथा दृ 'वर्ग' के शब्दों का प्रयोग शृङ्गार के नाना वर्णन में व्यञ्जनात् नमज्ज कर नहीं किया ? । किन्तु दूसरी धीर धीर धीर रौद्र रन के स्थलों में दृष्ट शब्दों का ही प्रयोग हुआ है । महा-राज जयचन्द के वीर्य के वर्णन में देनाग रंसी श्रौजपूर्ण सर्जित भाषा का प्रयोग किया गया है—

मुनत पग कवि वयन, नयन श्रुत घटन रक्तवर ।

भुवन धंरु रद अथर, चंपि उर वसति सामकर ॥

कोप कलमलि तेज मुन विक्रम अरि क्रमह ।

नगुन विचार कमध, दिप्पि दिनि चंद सु पिम्मह ॥

आदर सुभट्ट राजिन्द किय अंग ऐंठाह विमतारि करि ।

नन मिलन मोहि नभरि धनिय, कही वत्त मुप विरद घर ॥

जाना ही नहीं कवि की भाषा में भावों के मूर्तीकरण की अद्भुत क्षमता है । मूर्तीकरण की यह क्षमता जहाँ पर छो-बुल-भूमि के इन्धों के वर्णन में देती जा सकती है तो दूसरी धीर वानिजता, दन्दिनी धीर पृथापुमाणी की जब मधि की परतया का विचार करने में । इन चित्रों में जीवन का उभार, नयनोदना के मन में अपने अन्तर्गत के प्रति उठने वाले नाना मधुर भाव, गोमय कलाकर्म, नवीन भाव-भूमियाँ, नयेदनाओं आदि का विषय मुन्द का पडा है । वानिजता धीर रा. मधि का वर्णन देनाग विनता वनार्थ है—

जन सैन्य सुद्ध सनान भय । रवि वाल कधि क्रम ले अथय ॥

पर जीवन जीवन मधि अती । सु मिले जनु पिच्छ दान नती ॥

जु रदी गति सैन्य जुद्धनता । सुमनो ननि रजन रापदित ॥

जु पल गुरि मारन भंरुतिना । सुननो सुवेन गुरी सुदिना ॥

पत्त पुरानन मग्नि, पत्त अरुति उट्ट तुम् ॥

ज्यों समय द्यारिय पदिय सैन्य रिगोर तुम् ॥

शीतल मट सुगंध आड रितिराज अन्वान ।
 रोम राइ संग कुच, नितव तुछ मरसानं ॥
 बड्डै न सीत कटि छीन हँ लज्ज मान टंकनि फिरै ।
 ढकै न पत्त ढकै कहै वन वसत मन्त जु करै ॥

वस्तुतः कवि चन्द ने बड़ी ही सशक्त भाषा का प्रयोग किया है। शब्द-चयन में कठोरता, बटुता और मृदुता दोनों का ही समावेश है। वीर रस के चित्रण में वह ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जिसके द्वारा यह प्रतीत होता है कि मय्य कवि ही युद्ध भूमि पर सड़ा हुआ विरोधी सेना को ललकार रहा हो। सेना प्रयाण की गतिशीलता चित्रित करने के लिए कवि ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिससे नैनिकों के मार्च करने का दृश्य अंकित हो जाता है। और इन सभी विशेषताओं को अपने में समाहित करने के लिए कवि ने देशी-विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है अर्थात् कितने ही स्थानों पर सम्मिश्रण के छंद, तत्सम शब्दों का प्रयोग और व्रजभाषा का प्रवाह लक्षित होता है तो कितने ही ऐसे स्थान भी मिल जाएंगे जहाँ कवि ने डिगल भाषा का प्रयोग किया है। दोनों ही प्रकार के कुछ चित्र देखिए अपने आप में कितने सुन्दर बन पड़े हैं—निम्न पद्य में कवि मरम्बती के रूप का वर्णन करता है और अप्रत्यक्ष रूप में विजय वाधाओं को दूर करने की प्रार्थना करता है—

मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा अन्धा बुधा गोपिनी ।
 सेतं चौर सरीर नीर गहिरा गौरी गिरा जोगिनी ॥
 बीना पानि सुवानि जानि दविजा हंसा रसा आमिनी ।
 लवोजा चिहुरार भार जघना विघ्ना घना नामिनी ॥

इन पद में सम्मिश्रण के पार्श्व-विश्रीष्ट छंद में तत्सम शब्दों का प्रयोग दृष्ट्य है। इसी प्रकार में अन्य अनेक उदाहरण भी देगे जा सकते हैं।

घन्ता बहा जा नवना है कि रानोवार का भाषा पर अचूक अधिपार है। इ जैसे चाहता है शब्दों का प्रवाह मोट देना है, हर शब्द जैसे उनके हृदय पर नाचना चलता है और भावावेग में धाग-प्रवाह शब्दों को देगकर ऐसा

प्रतीत होता है जैसे इन कवि के पान शब्द-भण्डार की कमी ही नहीं है। प्रायश्चकता पढ़ने पर वह अरबी, फारसी के शब्दों का भी अपनी रचना में समाहार कर लेता है परन्तु बिहारी आदि के समान वहन सराद-नराज के साथ नहीं। इमीनिण डा० नामवरसिंह चन्द की भाषा के सम्बन्ध में उद्-घोषणा करते हुए कह उठते हैं—भाषानुफूल भाषा के मद और तीव्र सौंदर्य की जिन्हें चाह है वे चन्द के पास बार-बार मंडराएंगे।

छन्द-योजना—छन्द भाषा की गति तथा भंगिमा है इसलिए भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले कवि चन्द्रवरदत्त के यहाँ सुन्दर छन्द-योजना का होना भी स्वाभाविक ही है। हिन्दी का प्रादि जग्य-जन्य होने के कारण रासों में अनेक ऐसे छन्दों का प्रयोग मिलता है जो या तो अप्रचलित हैं या छन्द-शास्त्र में उनका उल्लेख अन्य प्रकार में मिलता है। जाना ही नहीं अनेक प्रकार के छन्दों के प्रयोग को देखकर तो पेंडप वृत्त रामचन्द्रिका का स्मरण हो आता है जहाँ पर एक ही गत में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग उन्ही प्रकार से परि-नित है जिस प्रकार से रासों के गतों में। किन्तु रासों में छन्द-योजना के क्षेत्र में पर्याप्त वैविध्य होते हुए भी तथा का प्रवाह सुगठित रूप से चलता है। उनमें रामचन्द्रिका के समान कहीं भी विष्टम्भलता देने की नहीं मिलेगी। इमीनिण तो डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी का कथन है—“विविध व्यापार प्रकार वाले रासों के प्रस्तावों की विषम छन्द-योजना और उसका स्वच्छन्द बीच विस्तार सरसता का साधक है, बाधक नहीं। बेशक तो रामचन्द्रिका और सूदन के सुजन पन्ति सदास रासों में भी छन्दों का सेना है परन्तु उनकी भाँति इनके छन्द कथा-प्रवाह में अवरोध नहीं डालते बल्कि अस्मर के धनुष-ध्वज, माधुर्य और प्रभाव गुणों की सफल सृष्टि करते हैं।” चन्तु हम साहस की माय कह सकते हैं कि यदि वे अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। तथा के मोठों की अपनी प्रकार पहचान पर यहाँ और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासों का गति-पतन सामान्य में छन्दों का सम्पादक था।”

कवि चन्द ने अपने काव्य में गाथा, आर्या, दूहा, पद्वरी, अरिल्ल, रोला, मालिनी, दोवक, भुजङ्गप्रयात, मोतियादाम आदि अडसठ प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। कवि ने इन सभी छंदों का चयन रस और विषय के अनुकूल किया है। कही-कही एक ही रस के लिए एक से अधिक छंदों का प्रयोग भी किया गया है लेकिन ऐसे स्थलों पर भी भावों को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचाई गई है। इसीलिए तो डा० नामवर सिंह पृथ्वीराज रामो की भूमिका में लिखते हैं—“वस्तुतः हिन्दी में चन्द को छंदों का राजा कहा जा सकता है। भाव भगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नये नये छंदों में गति धारण करती चलती है और विशेषता यह है कि बल खाती हुई नदी में बहते हुए चित्त को कोई मोड़ नहीं खटकता। छंद-परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्म विस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।”

रासो में प्रयुक्त छप्पय छन्द में वीर भावों की इतनी सुन्दर और सफल अभिव्यक्ति हुई है कि इसी छन्द को बाद के हिन्दी कवियों ने वीर भावों के लिए उपयुक्त समझकर घडल्ले से प्रयोग किया। हिन्दी के प्रमुख कवियों नाभादान, नरहरि, तुलसी, गग, भूपण, मूदन आदि ने वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए इसी छंद को चुना। निम्नदेह चन्द ने अपनी काव्य-प्रतिभा के कारण इस छंद को अत्यन्त लोक-प्रिय बना दिया। मभवत इसीलिए ड० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है—“वैसे तो हर तलवार की टंकार में चन्द्रवरदाई तोटक, तोमर, पद्वरी और नाराच पर उतर आते हैं पर जमकर ये छप्पय और दूहा ही लिखते हैं। “चन्द्रवरदाई छप्पयों का तो राजा था।”

अलंकार-योजना—भाषा-मोन्दर्ष की मृद्धि के क्षेत्र में अलंकारों का प्रयोग भी पर्याप्त सीमा तक महाप्रचुर होता है। चन्द ने भी उस माधन में अपने काव्य में मोन्दर्ष की अनिमृद्धि की है। किन्तु चन्द्रवरदाई की अलंकार-योजना पर विचार करने समय सर्वप्रमुग बात देखने में यही आती है कि उनके अलंकारों का प्रयोग भावों के उत्कर्ष के लिए ही किया है पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं। निम्न पद में कवि ने पद्मावती के रूप-मोन्दर्ष का चित्रण किया है और माध्यम अपनाया है उत्प्रेक्षा, अनितोषमा और अतिशयोक्ति अलंकारों को—

मनहुँ कला समिभान कला मालह मो यन्त्रिय ।

बाल बेस नमि ता समीप, अम्रित रस पिन्त्रिय ॥

त्रिगमि कमल-त्रिग, भ्रमर, नैनु खंजन त्रिग लुट्रिय ।

हीर कीर अरु विव मोनि नव मिप अहि धुट्रिय ॥

✓

×

×

पद्मिनीय रूप पद्मायनीय मनहुँ काम, कामिनि रचिय ।

इसी प्रकार ने एक अन्य स्थल पर पृथ्वीराज चौहान ने कहा कर गति-
प्रता का हाथ पकड़ा और कवि ने इन व्यापार की तुलना इन प्रकार में की
मानों मदभरे हाथों ने स्वर्णलता को तहरा दिया हो—

चौहान हृदय वाला गहिय । सो ओपम कवि चंद कहिय ।

मानों कि लता कंचन लहरि । मत्त वीर गजराज गहिय ॥

यहाँ पर मदाध गजराज की उपमा से राजा की मनोदना एवं शक्ति
गम्भीरता का तथा स्वर्णलता की उपमा से रानी शिववृत्ता के गोन्दपं तथा
पृथ्वीराज जैसे महावीरों के हाथ में कोमलागिनी की स्थिति का जितना मजबूत,
गुंजर और स्वाभाविक विवरण हुआ है ।

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में अनकार योजना बहुत ही नायक और
स्वाभाविकता की रक्षा में नम्रवर्त है । पृथ्वीराज चौहान की युद्ध के लिए
की गई शीघ्रता की तुलना युगत वट में एक मन के बेग से नम्रवार निरानने
की गति की उपमा की है गुंजर बन पड़ी है—

उट्टि राज प्रथिराज याग लग मनो वीरनट ।

कहत तेग मन बेग लगन मनो धीज नट्ट घट ॥

महाकवि चन्द्रबर्धन ने पृथ्वीराज रानी में शान्तिपूर्ण से लिए परमा-
मित्र प्रानीत उपमाओं का प्रयोग तो पूर्ण सत्यता के साथ किया ही है मगर
ही नवीनजीवन उपमाएं जोखर लाने में भी उन्होंने ने कम नहीं है तथा—
असौ समि फल जस्यो मनिप्रद । उग्रो गुरुदेव सिधौ निधि मरु ॥

यहाँ पर महाकवि चौहान की उपमा स्वर्णलता में निरानने हुए गुंजर
में ही गई है ।

का व्यवहार हुआ है। कहीं कहीं एक ही छंद में अनेकों भाषाओं के शब्द प्रयुक्त हुए मिलते हैं।”

परन्तु केवल इस प्रकार की भुक्कलाहट और दोपारोपण से ही कार्य नहीं चल सकता अपितु दृष्टव्य तो यह है कि वह कौन सा मूल कारण है जिसके परिणामस्वरूप आज रासो की भाषा में विविधता परिलक्षित हो रही है और उसके स्वरूप निर्धारण में कठिनाई पड़ रही है। अब हम मधेप में इसी तत्त्व पर विचार करेंगे। अस्तु—

रासो विक्रमनशील कोटि का महाकाव्य है जिसके कारण प्रत्येक दिशा में अनेकरूपता दृष्टिगत होती है। भाषा के क्षेत्र में तो रासो में दिए गए इस “पट् भाषा पुरान च कुरान कथितं मयम” अन्तर्साध्य के आधार पर यह अनेकरूपता इतनी आड़े हाथों आती है कि आज यह एक समस्या उत्पन्न हो गई है कि रासो की भाषा को पचमेल खिचड़ी कहा जाए अथवा कुछ और।

अनेक प्रभृति विद्वानों ने उपर्युक्त अन्त साध्य के आधार पर रासो में ब्रज, मागधी, अमर (मस्कृत) नाग यमन (अरबी) और फारसी भाषाओं का मिश्रण बतलाया है और पट्भाषा के इस अर्थ की पुष्टि भिलारीदाम के निम्न दोहे से की है—

ब्रज मागधी मिलै अमर नागयमन धरवानि ।

सहज पारसी हू मिलै पट् विधि करत बरवानि ॥

परन्तु ध्यातव्य तो यह है कि रामोकार के समय में ब्रजभाषा का विकास नहीं हुआ था और न ही उसे इन भाषाओं से परिचय था। इतना ही नहीं यों भी बड़ी मोटी बात है कि कोई काव्य एक निश्चित भाषा में रचा जाता है, उसे विविध भाषाओं का अजायबघर नहीं बनाया जाता। अतः उपर्युक्त अन्त साध्य वाले दोहे में रामोकार का मकेन भाषा-वैविध्य की ओर न होकर शैली-वैविध्य की ओर ही दृष्टिगत होना है।

वस्तुन. रासो सम्बन्धी भाषा विषयक विवाद का आरम्भ हुआ था ० बूनर यदि द्वारा ग्राइज आदि को रासो सम्बन्धी कार्य से विरक्त किए जाने पर

अर्थात् जब रामों की प्रामाणिकता पर संदेह किया जाने लगा श्री- उगी नमय टैनीटरी एवं ग्रियर्सन ने रामों को पश्चिमी हिन्दी अर्थात् पिन्नर के नाम से अभिहित किया। यद्यपि यह मन केवल उनके भ्रमिष्ठान्त की उत्पत्ति नहीं थी क्योंकि उनमें भी पूर्व १८७३ ई० में मि० ग्राउज ने Asiatic Society Journal में गद्यपरम्परात्मक निबन्ध प्रकाशित किया था जिसमें उन्होंने इस तथ्य की प्रस्थापना की थी कि रामों की प्रियाओं, मज्जाओं, विभक्तियों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि उनकी भाषा वज्जभाषा ही है। आगे के बीच राम के छंदों में प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध में कहते हैं कि उस समय की परम्परा के अनुसार बीच राम के वर्णनों में मर्दों की बड़ी- बसाने के लिए मर्दों की नोज मरोटा जाता था तथा राजस्थानी के समान उसे उद्दिष्ट दिग्गज बना दिया जाता था। यह बात उत्तरराष्ट्रीय भाषाओं तथा भूपत्त, मृदुल आदि की रचनाओं में स्पष्टतः लक्षित होती है। उगी मन की पुष्टि करने हुए बाद में सर्वश्री ग्यामनुन्दनाम, श्रीरेण्ड यमा श्री- नागम ग्वामी ने भी इस प्रश्न की विवेक भाषा की ही रचना बना। तदुपरान्त राजस्थानी पण्डितों द्वारा मैत्रीदास मनेरिया आदि ने उसे पुनर्गति राजस्थानी अर्थात् दिग्गज के नाम से मुनीमिा किया तो डा० रमाय शर्मा, मनोहरम ग्वा आदि ने उसे राजस्थानी पुनः पुनः संपन्न माना। इन प्रकार ने दिग्गज, पिन्नर और प्रयत्न ने प्रभावित राजस्थानी आदि भाषाओं के लिए महत्व क्षेत्र में एक विस्तारवादी का उत्पन्न हो गया। प्रा रामों की भाषा के सम्बन्ध में इस प्रसंग की दूर करने के लिए पिन्नर एवं राजस्थानी पुनः पुनः संपन्न भाषा मानने वाले लोगों का विस्तारण करना उचित समझा है।

दिग्गज के सम्बन्ध में आज हमारे परिभाषाएँ प्राप्ति हैं। यदि कोई मान लेंगा भाषा की दिग्गज मानने के पक्ष में है और इस प्रकार के लोगों के सम्बन्ध में हमारे वर्णनों का आधार होने के कारण इसे दिग्गज माना जा सकता है। यदि कोई माने कि पिन्नर-जन सविधि-प्रेम करने, उनमें के सम्बन्ध में यह वर्णनों की प्रयोग में निम्न भाषा की दिग्गज मानकर लोगों में दिग्गज का प्रयोग है। इसका ही नहीं कुछ दिग्गजों को लोगों में प्रयुक्त परम्परा दिग्गज के

होता है। यह सुललित एवं मधुर पदावली रासो में आद्योपात प्रयुक्त हुई है उदाहरणतः कुछ चित्र देखिए—

सम वनिता वर वदि, चंद जपिय कोमल कल ।
सबद ब्रह्म इहि सत्त, अपर पावन कहि निर्मल ॥

अथवा—

फूलि कित्ति चहुआण की जुगनि जुग निवास ।

अथवा—

पय सक्करी सुभत्तौ । एकत्तौ कनय राय भोयंसी ॥
कर कंती गुञ्जरिय । रच्चरियं नैव जीवंति ॥

अथवा—

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रासि ।
पसु पछी सब मोहिनी, सुर नर मुनिवर पास ॥

इतना ही नहीं कितने ही छंदों में मस्कृत के छंद, तत्सम शब्दों का प्रयोग और अजभाषा का प्रभाव लक्षित होता है। शार्दूलविक्रीडित छंद में इन्हीं विशेषताओं ने युक्त एक चित्र देखिए—

मुक्ताहार विहार सार सुबुधा,
अब्धा बुधा गोपिनी ।
सेत चौर सरीर नीर गहिरा,
गौरी गिरा जोगिनी ॥
वीना पानि सुवानि जानि दधिजा,
हंसा रमा आसिनी ॥
लघोजा चिहुरार भार जधना,
धिघ्ना घना नासिनी ॥

परन्तु यह पिगल भाषा प्राचिनिक पिगल न होकर उम पुरानी पिगल की घोचक है जो साहित्य क्षेत्र में १२वीं शताब्दी ने लेकर १६वीं शताब्दी तक

प्रचलित रही और जिसे पुरानी हिन्दी के नाम ने अभिहित किया जा सकता है। इतना ही नहीं रामानुजर द्वारा दिए गए पद भाषा में तात्पर्य है उन समय में प्रचलित अपभ्रंश मूलक शब्द प्रवृत्ति, संस्कृत के अनुस्वारों और शुद्ध तत्त्वम शब्दों के ग्रहण, पैशाची प्रवृत्ति, पाली एवं महाराष्ट्री की प्रवृत्ति और गौरमेनी की प्रवृत्तियों से और निश्चय ही चंद ने अपनी रचना में उन सभी पद्धतियों का समाहार किया है। अपभ्रंश मूलक प्रवृत्ति के अन्तर्गत कार्य में कञ्ज, आप से अप्प हो जाया करता है और रासो में भी यह प्रयोग परिलक्षित होता है।

संस्कृत के शुद्ध तत्त्वम शब्दों एवं अनुस्वारों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है यथा—

हनिन निनायका मेना, कथित न च पूर्वं यम्
अपुद्ध चपन्न एषा जिना स्वामि रणे युधम् ।

इसके प्रतिनिधित्व अर्द्धमागधी की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। उनके अन्तर्गत दो स्वरों के बीच में जहाँ न आता है उसे हटते हैं या कभी कभी क या प में परिवर्तित कर देते हैं। रामानुजर ने भी ऐसा ही किया है यथा सागर से सागर। पैशाची प्रवृत्ति में उ के स्थान पर न का प्रयोग हुआ करता है। और रामानुजर भी प्रमाण का प्रमाण कर देता है। गौरमेनी के अन्तर्गत शिबन गम्बन्धी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। रासो में भी उन सबका प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार यदि समग्र भाव में ध्यानपूर्वक किया जाए तो हम यह कह सकते हैं कि रामानुजर ने दिन ६ शैलियों का सौजन्य किया है वे उनमें प्रयुक्त हैं।

रासो की भाषा की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं यथा रासो में दृढानुरोध के शब्दांतर्गत कहीं कहीं लघु स्वरान्त को गुण स्वर दिया गया है यथा—प्रसी मत्त मत्त उग्यो चद भानं ।

शब्दों में अनुस्वार प्रयोग सम्भव रूप देने के लिए नहीं किया गया है क्योंकि दिया गया है ह्रस्व इति के लिए। तुक्तीरा ने उन प्रयोगों का प्रयोग किया था यथा—

प्रकार वह श्रमणी ही बधनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है—उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन, कपन तथा वेग प्रदान कर निर्जोब शब्दों के रोड़ों में एक कोमल सजल कलस भर कर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियंत्रित मासें यंत्रित हो तानयुक्त हो जाती हैं, उनके स्वरो में प्राणायाम, रोओं में स्फूर्ति आ जाती है, राग की असम्बद्ध झुकारें एक वृत्त में बध जाती हैं, उनमें परिपूर्णता आ जाती है।" तो प्रसिद्ध पाश्चात्य समालोचक होरेम अपनी, पुस्तक 'आर्ट ऑफ पोइट्री' में लिखते हैं—

Metres appropriate to epic, elegiac satiric and other poetry have been settled once for all and must not be changed, a comic matter refuses to be set forth in tragic verse and contrastwise even tragic heroes in poverty and exile cast aside their yard long verbiage and their swelling pride of language, if they wish to touch the spectators.

श्रीर वस्तुतः इस प्रकार के विचार ठीक भी हैं क्योंकि मात्रा, वर्ण, यति, लय आदि के संगठन में युक्त एक विशेष छंद एक विशेष अनुभूति को उकसाने, एक विशेष भाव को समझाने तथा एक विशेष रस की अभिव्यञ्जना करने में सहायक मिष्ट हो सकता है। कविर चन्द्रवरदाई इन सभी बातों में अनभिन्न न थे, वे छंद की महत्ता भलीभांति समझते थे। फलतः उनके काव्य में हमें विचित्र प्रकार के मात्रिक, वर्णिक छंद दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि आदि काव्य होने के कारण उनके काव्य में बहुत से ऐसे छंद भी मिलते हैं जो या तो अप्रचलित हैं या छंद शास्त्र में उनका उल्लेख अन्य प्रकार में मिलता है।

रामो के प्रणेताने आदि पत्र में नाटक, नृजगप्रयात, दूहा, कवित्त, गाहा, परिक्ख, पजरी, मोतीयदाम, चावि, करणा विपप्परी आदि बारह-तेरह प्रकार के छंदों का प्रयोग बड़ी मात्रा में किया है। उसने कहीं भी ऐसा म्यन नहीं आने दिया है जहाँ पर काव्य की भावना को बाधित पहुँचे। वस्तुतः

छंदों के प्रयोग में रामोकार की नवमे बड़ी विशेषता यही है कि वे भावों के साथ पूर्णतः मेल खाते हुए चलते हैं, भावों के उत्कर्ष में माधक ही निम्न होने हैं, बाधक नहीं।

अलंकार प्रियता मानव-भाव के लिए एक स्वाभाविक-नी वस्तु है। यह अलंकारिता का प्रेम मानव-भाव के रस में मिला हुआ है। इसके मूल में आत्म दर्शन की सहज प्रवृत्ति है। इनके साथ और भी छोटी छोटी कई प्रवृत्तियाँ जैसे व्यवस्था, प्रियता, एवम्, प्रेम भी मिली जुली रहती हैं। यह प्रवृत्ति मानव की समाज-प्रियता का फल है। भाषा का उदय भी इसी प्रवृत्ति में हुआ है। हमारी भाषा के अलंकारों का इसी प्रवृत्तियों में सम्बन्ध है। गार्हपत्य के मंत्रों में जो आनन्द और उत्साह प्रेरक होता है वही अलंकारिता भी मूल स्रोत है। हृदयगत भावों को व्यक्त करने के लिए जब भाषा कम-जोर पड़ जाती है तो मानव स्वतः अलंकारों को अपनाता है। कवि इस स्थिति में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का आरोप करके कविता को उत्कर्ष पर पहुँचाता है। कवि की कल्पनाएँ उन्मुक्त पक्षों की भाँति गगन में विचरण करने लगती हैं। अनीतिक तथा अनुपम मोन्दरों को बटोर कर कवि काव्य जगत में सुगन्धित पुष्प-पराग को बिखेरता है। इनलिए काव्य जगत में अलंकारों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीर को सुन्दर, गठ्ठा हुआ और अनुपम बनाने में आभूषणों की आवश्यकता है। प्राचीन काल में अलंकारों का प्राधान्य माना जाता रहा है क्योंकि 'अलंकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्।' ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने काव्य में अलंकारों की शरीर के बाह्य आभूषणों न मान कर केवल मोन्दरों ही माना है। 'मोन्दर्यमलंकारः' इस प्रकार काव्य-लक्षण इस वृत्ति में निहित है। कई स्थितियों ने अलंकारों को काव्य में उनी प्रकार निहित आवश्यक माना है जिन प्रकार ध्वनि की उत्पत्ति में धुंधली धोर डगमगाती की स्थिति आवश्यक और अनिवार्य होती जाती जाती है। काव्य के रसमय की हीन प्रकार में समझने वाले अलंकारों को हास्यविशुद्धी समझते हैं। परन्तु हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार आभूषणों आदि के न पहनने में शरीर के शरीर की स्थिति ठीक नहीं है उसी प्रकार काव्य के अलंकारों के न पहनने के

लिए अलकारों के बिना काम चल सकता है। अतः अलकारों की योजना आवश्यक नहीं होती। यथा-अवसर उनका प्रयोग होता रहता है और होना भी चाहिए।

अलंकार भावों को व्यक्त करने की एक शैली है। जो लोग अलंकारों का विरोध करते हैं और अलंकारों का प्रयोग करने वालों को खरी-मोटी मुताते हैं वे लोग स्वयं अपनी कविता में अलंकारों का प्रयोग कर जाते हैं। वास्तव में कवि के पास अपने विषय को हृदयगम कराने के लिए अलंकारों के विनाय दूसरा कोई उपाय नहीं। वे अप्रस्तुतों की योजना के द्वारा पाठक को समझाने का प्रयत्न करते हैं।

कवि काव्य में अलंकारों का प्रयोग दो रूपों में करता है। एक स्वतन्त्र रूप में दूसरा सहायक रूप में। स्वतन्त्र रूप में प्रयोग सर्वथा चमत्कार को ही पैदा करता है। सहायक रूप में अलंकारों का प्रयोग मूल विषय को हृदयगम कराने के लिए ही होता है। चन्द्रवरदाई महोदय कवि थे और कहने की आवश्यकता नहीं कि इसीलिए उन्होंने अपने काव्य में द्वितीय रूप की ही प्रधानता रखी है। उनके आदि पर्व में भी हमें यही बात देखने को मिलती है। आगामी सदर्भ में अपने इसी मन की पुष्टि के लिए हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि चन्द्रवरदाई ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग नहज स्वाभाविक रूप में ही किया है। फलतः उनके यहाँ अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टांत आदि का ही प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। इन्हीं और इसी प्रकार के अलंकारों ने कवि को अधिक प्रेम है। इसका नवने बड़ा उदाहरण यह है कि कवि ने अपने काव्य के 'आदि पर्व' तरु में इन्हीं अलंकारों का प्रयोग किया है, प्रमाण के लिए कुछ चित्र देविए—

अनुप्रास—

मुक्ताहार विहार नार मुबुवा, अन्वा, बुवा गोपिनी
मेत चौर शरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगिनी ॥

मन्त्र—

साध्य समुद्र कवि चंद्र कृत, भुगति समप्पन ग्यान ।
राजनीति ब्राह्मि मुक्ल, पार उतारन यान ॥

उपदेश—

पाष विराजत सीम पर, जरकम जोति निहाय ।
मनों मेर के सिपर पर, रणों श्रद्धाति आय ॥

प्रतिशयोक्ति—

ज दिन जनम प्रिथिराज । परिग घत्तह कनयज्जह ।
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन गज्जन पुर भज्जह ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । न दिन पट्टन वै सद्धिय ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन मन कालन पद्धिय ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन भार घर उत्तरिय ॥
धनरीय यम अमन ब्रह्म । रही जुगे जुग धनरीय ॥

समग्रत कहा जा सकता है कि चन्द्रवन्दार कृत पृथ्वीराज रागा के प्रादि पंक्तों का महत्त्व दिनों भी अन्य पंक्तों या समय से कम नहीं है ।

✓ प्रश्न ११—‘पद्मावती-समय’ की संक्षिप्त कथा देते हुए पाठ्य-पुस्तक के विभिन्न उपकरणों की दृष्टि से उनकी समीक्षा कीजिए ।

हिन्दी साहित्य के प्रादि महाकाव्य पृथ्वीराज रागा में ‘पद्मावती-समय’ प्राग्गा का विनिर्दिष्ट भाग है । इसमें यदि वे महाकाव्य पद्मावती के उन्ना में केवल उनके विगत महा की घटनाओं का प्रति मुद्रण करना होता है ।

पद्मावती पूर्ण गिरा में समुद्र विषय नामक कुं के कहाने का विवरण की कल्पना मुद्रण पूर्ण थी । इस दिना यह का कल्पना कल्पितों के साथ उद्योग में एक गरी थी यह उनके एक मुद्रण को जो कल्पना गिरा कीर को के विवरण में एक एक दिना । उन्ना को के विनिर्दिष्ट कल्पितों में यह मुद्रण की मुद्रण पद्मावती नर में पृथ्वीराज पर प्रमुद्रण का मुद्रण ।

उट्टि राज प्रथिराज, वाग लग मनो वीर नट ।
कदत तेग मन वेग, लगत मनो वीज भट्ट घट ॥

कवि ने युद्ध-स्थल के दृश्यो का अकन करते समय दृश्य-मा अंकित करने के कोशल का भी परिचय दिया है यथा—

गही तेग चहुँवान हिन्दुवान रानं । गज जूथ परिकोप केहरी समानं ॥
करे रुंड मुंड करी कुभ फारे । वरं सूर सामंत फकि गर्ज भारे ॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे । मद तजिय लाज उमंग भग्गे ॥
दौरि गज अंध चहुँवान केरो । घेरीय गिरह चिहो चम्क फेरो ।
गिरह उड़ी भांन अंधार रैनं । गई सूधि सुब्बे नही मळि नैनं ॥

वीर और शृङ्गार रसो के अतिरिक्त कवि ने रौद्र, भयानक और बीभत्स रसो की योजना भी अपने इस छोटे से प्रकरण में की है किन्तु वास्तविकता तो यही है कि इस प्रकरण का अंगीरस वीर नवप्र शृङ्गार को अपने साथ समेटे हुए है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि योद्धा अथवा वीर स्वभावतः ही सौन्दर्य प्रेमी होता है और गानो में वीर हृदय की भावनाओं को ही चित्रित किया गया है । लेकिन रासो की शृङ्गार-भावना वैयक्तिक कुण्ठाओं और मानसिक ग्रथियों वाली विकृत शृङ्गारिकता नहीं है वरन् स्वस्थ, स्वाभिमानी, अल्टूड तथा कर्मठ वीर के हृदय में हिलोरें मारने वाली शृङ्गारिकता है ।

प्रकृति चित्रण—चंद्रवरदाई ने अपने महाकाव्य 'पद्मराज रासो' में प्रकृति का सुन्दर, सजीव और स्वाभाविक वर्णन किया है । यद्यपि इस कथन में भी कोई अत्युक्ति नहीं है कि प्रकृति का उतना विस्तृत और सजीव वर्णन उनके काव्य में नहीं दृष्टा है जितना उनके पूर्ववर्ती सम्कृत कवियों ने अपने काव्य में किया था किन्तु इसका भी एक कारण है और वह यह कि चंद्रवरदाई वीरगाथा काव्य के प्रणेता हैं जिनका मूल लक्ष्य माहम, वीरता और शौर्य का प्रदर्शन करना रहा है । फलतः प्रकृति-दर्शन के लिए उनके काव्य में बहुत ही कम स्थान रहा है किन्तु इसका होने हुए भी रामोकार ने प्रकृति के लिए अपने काव्य में स्थान निम्नान ही दिया है ।

पद्मावती-समय' में प्रकृति-चित्रण के विभिन्न रूपों—प्रातःवन, उद्दीपन, अलङ्कारण आदि में अलङ्कारण और उद्दीपन रूपों का ही प्राधान्य है, प्रातःवन रूप का तो इस प्रकार में अभाव ही है। लेकिन अन्य रूपों—उद्दीपन और अलङ्कारण—में कवि ने स्थानाविवेक का पूरा ध्यान रखा है। इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण हमें पद्मावती के रूप मोन्दर्य के वर्णन में देखने को मिलता है। उगने गर्वण रूप चित्रण करने में प्रकृति के निरन्तरित उपमानों—कमल, भ्रमर, मृग, हंस, मृग, विद्या आदि का ही प्रयोग है—

मनहु जला नमिभान जला मोलह नो घनिय,
 बाल बेस नमि ता नमोप अम्रित रन भिनिय ।
 विगमि कमल मृग भ्रमर नैन रंजन मृग लुट्टिय-
 हीर कीर अरु विद्य मोति नप निप अहि बुट्टिय ।
 लुट्टपति गयद हरि हम गति विहवनाय नच नचिय;
 पदमिनिय रूप पद्मावनिय मनहु काम कामिनि रचिय ।

किन्तु रेशम आदि वस्त्रों के समान लहरी भी अस्थानाविवेक नहीं माने दी है।

कोई स्थान नहीं है कि रासोकार का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वीर रस के वर्णन में वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जिसे पढ़ते ही हृदय ओजमय हो जाता है। इसी प्रकार शृंगार के वर्णन में भी उसकी भाषा ऐसी कोमलता और मधुर ध्वनि-व्यञ्जक शब्दावली से युक्त हो गई है कि हृदय में माधुर्य और सरमता का संचार स्वतः होने लगता है। भाषा की रसानुगुणता के साथ-साथ उसमें संगीतात्मकता का गुण भी ऐसा मिलता है कि हृदय बरबस उम और आकृष्ट हो जाता है।

छंद योजना—पद्मावती-समय में कवि ने दोहा, कवित्त (छप्पय), गाथा, पद्वारि तथा भुजग-प्रयात छंदों का प्रयोग किया है। प्रायः उन्होंने दोहे के अन्तिम चरण का कवित्त के प्रथम चरण के रूप में पुनर्स्थापन किया है यथा—दूहा—

आनो तुम्ह चहुवांन वर अरु कहि इहैं सँदेस;
साँस सरीरहिं जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेश ॥

कवित्त—

प्रिय प्रथिराज नरेश जोग लिपि कगगर दिन्नी;
लगुन वरग रचि सरथ दिन द्वादस ससि लिन्नी ।

यद्यपि कहीं-कहीं इसके अपवाद भी दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु वे अपने आप में अत्यंत नगण्य हैं।

वस्तुतः कवि ने छंदों के प्रयोग में भी स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है और यह स्वाभाविकता दूहा और छप्पय में आकर ही अधिक बलवती हुई है। सम्भवतः इसीलिए तो डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'सक्षिप्त पृथ्वीराज रामो' की भूमिका में लिखते हैं—“वैसे तो हर तलवार की टकार में चंद्रवरदाई तोटक, तोमर, पद्वारी और नाराच पर उतर आते हैं पर जमकर ये छप्पय और दूहा ही लिखते हैं।”

अलंकार योजना—‘पद्मावती-समय’ में अलंकारों का प्रयोग भी कवि ने सहज और स्वाभाविक रूप में किया है। कहीं भी ऐसा अवसर नहीं आने दिया

है जहाँ अन्तारो के घटादीप में भावधारा एतदम विनूय हो जाए। उनमें तो
उपमा, उपमेधा, मय, अनिव्योक्ति, बीप्सा और अनुप्रास जैसे उन अन्तारो
को सुना है जो बिना किसी प्रयोग के स्वतः ही नभाविष्ट हो जाते हैं और
भाव-योग की वृद्धि में सहयोग देने हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छंद में
उपमा का महज-व्यापारित और सुन्दर प्रयोग देखिए—

उट्टि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट ।

फड़त तेग मन बेग लगत मनो घोज भट्ट घट ॥

गमना कहा जा गमना है कि 'पद्मावती-समय' में भावधारा और भाव्य
शिल्प का अत्यन्त निगमनमय और सुनिर्वाजित रूप दृष्टिगत होता है।

✓ प्रश्न १२—'पृथ्वीराज रानो में घोर भायो की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति
हई है और वहाँ वहाँ कोमल कल्पनाओं और मनोहारणी दृष्टियों से इसमें
अपूर्व समत्कार छा गया है।' उपपुत्र उद्धरण देने हुए इस कथन की समीक्षा
कीजिए।

उन्होंने पृथ्वीराज के साथ कथे से कथा भिड़ा कर शत्रु का सामना भी किया था । फलतः उनके युद्ध वर्णन अपने पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती कवियों की अपेक्षा अधिक गुन्दर बन पड़े हैं । उनके यहाँ मस्कृत कवियों के युद्ध वर्णनों के समान केवल बाहरी मैन्य वैभव, राजगी ठाट-वाट, हाथियों की चिघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, शम्शो की गुजार और युद्ध की भीषणता का ऊपरी वर्णन ही नहीं है अपितु युद्ध स्थल में योद्धा के युद्ध-ममय की मनोदशा के चित्रण तथा मानसिक मधर्ष के भी गुन्दर चित्र मिलते हैं । और वस्तुतः यही कारण है कि ये चित्र पाठक को एक दम अपनी ओर सींच लेते हैं । यवन-सेना का एक सञ्जलित चित्र देखिए—

खुरासान मुलतान संधार मीर । बलरु सो बल तेग अचचूक तीरं ॥
 रुहंगी फिरगी हलंवी समानी । ठठी ठट्ट वल्लोच ढाल निमानी ॥
 मजारी चखी मुख जवक लारी । हजारी हजारी डकै जोध भारी ॥
 तिन पपपरं पीठ हय जीन माल । फिरंगी कती पाम मुकलात लाल ॥
 तहाँ बाघ बाघं मरूरी रिहोरी । घन मार समूह अरु चौर गोरी ॥
 परासी अरन्धी पटी तेज ताजी । तुरक्की महावान कम्मान बाजी ॥

स्विर दृश्यों के चित्र प्रकृत करने के अतिश्रित चन्द ने मुद्रा-निर्माण में भी अपने दाय्य-कौशल का पर्याप्त परिचय दिया है । उन प्रकार के वर्णनों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द मुद्रा विशेष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म हाव-भाव को पहचानने और उमता शब्द चित्र प्रस्तुत करने में निद्विहस्त थे । एक उदाहरण में यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी । राजा पृथ्वीराज यवन-घातमरण की सूचना मिलते ही तुरन्त सामना करने के लिए तैयार हो गए । जिस वेग तथा स्फूर्ति के साथ वह तैयार हुए उमता वर्णन चन्द ने इस प्रकार किया है—

उट्टि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट ।

कदत तेग मन वेग, लगत मनो वीज मट घट ॥

युद्ध स्थला के घगन में भी चन्द ने इन्हीं सूक्ष्म निर्गोक्षण तथा दृश्य साधनित करने के कौशल का परिचय दिया है—

कहौं कमध कहौं मध कहौं कर चरन अंतरि ।
 कहौं कव कहि तेग कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर ॥
 कहौं दंत मंत हय खुरपु परि कुम्भ भ्रमुन्दह रुन्द मय ।
 हिंदवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुँवान जय ॥

घरने नागर की युद्ध धोरता का वर्णन करते समय भी चन्द ने इसी नूतन निरीक्षणता ने काम लिया है। देखने की बात तो यह है कि इन युद्ध-वीरता के वर्णन में केवल अत्युक्तियों, अथवा अतिशयोक्तियों के बल पर पाठक का शक्तिगत मनोरंजन करने का प्रयत्न नहीं किया गया है अपितु प्रत्यक्षानुभव के आधार पर रणभूमि में रण-नीशल दिखाते हुए योद्धा की विभिन्न मुद्राओं और रणस्थली के विभिन्न दृश्यों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है—

गहौं तेग चहुँवान हिंदुवान रान । गर्ज जूथ परिकोष केहरी समान ॥
 करे रुँड मुँड करी कुम्भ फारे । घर सूर नामत हुकि गर्ज भारे ॥
 करी चीह विकरार नरि कलप भग्ने । मट नजिय लाज उमग मग्ने ॥
 दौरि गज अध चहुँवान केरो । बेरीय निरह चिही चम्क केरो ॥
 निरह उली भान आधार रैन । गह सुथि सुम्मे नही मक्कि नैन ॥

रणस्थली का ऐसा स्याम चित्रण प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर ही हो सकता है। घयकाण के धर्मों में बड़े बड़े समर्थों में वैदिक कल्पना विज्ञान के जग मंत्राली की महान-भाव का अतिरिक्त रंगन तो लगा जाना होता है कि तु रणभूमि में योद्धा किस प्रकार खड़ी जान तथापि पर राखर घबरी रणभूमि के लिए आश्चर्यचकित होता है, इसका अच्छा चित्रण यही जति पर होता है। जिसने जाना अभी नयजान समय में लेकर शत्रु का नाश किया है। यही जाना है कि जो परि रणभूमि में मय शत्रु का उट पर माना करने है उसके युद्ध वर्तनों में पम्पना-विमान की-सा विजय चित्रण का प्रायः सम्भव है और जो मय रणभूमि के घय पर युद्ध-विमान किया करने है मय प्रायः हथियारों, विभिन्न प्रकार की गोदों की-सा मय रणभूमि के मय विमानों में हो रहे जाते हैं। इसी रण की युद्ध के हेतु नीची-सा मय रणभूमि

लिखते हैं—“रासो की विशेषता यही है कि उसमें वीर हृदय के उच्छ्वास सगृहीत हैं, कल्पना-विलास नहीं। शायद इसी विशेषता से प्रभावित होकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था—भक्तिरस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य में किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रान्त ने निम्न या उच्चकोटि का साहित्य पैदा किया है लेकिन राजस्थान ने अपने रस से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड़ का साहित्य और कहीं नहीं मिलता।”

रामो में वीरभावना का मूल्यांकन करते समय एक ध्यातव्य बात यह है कि वह सर्वत्र शृङ्गार को अपने साथ समेटे हुए है। वस्तुतः योद्धा अथवा वीर स्वभावतः सौन्दर्य प्रेमी होता है और रामो में वीर-भावनाओं के चित्रण के कारण शृङ्गार-भावना का चित्रण होना भी स्वाभाविक ही है। पर रामो में चित्रित शृङ्गार-भावना की विशेषता यह है कि वह वैयक्तिक कुण्ठाओं और मानसिक ग्रन्थियों वाली विकृत शृङ्गारिकता नहीं है वरन् स्वस्थ, स्वाभिमानी, अल्टूड तथा कर्मठ वीर के हृदय में हिलोरें मारने वाली शृङ्गारिकता है। जिस प्रकार चन्द ने वीर हृदय की अछूती वीर भावनाओं को बिना किसी हेर-फेर के उनके यथार्थ रूप में ही चित्रित किया है उसी प्रकार मधुर भावनाओं को भी निस्संकोच रूप से उनके नैसर्गिक रूप में ही व्यक्त किया है। इस प्रकार उनके शृङ्गार-वर्णन में जहाँ एक ओर भावनाओं की नैसर्गिकता है वहाँ दूसरी ओर एक अनूठी स्पष्टवादिता भी है। कहीं पर किसी भी प्रकार की विकृति या कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते। भाव और अभिव्यक्ति सम्बन्धी इस नैसर्गिकता तथा स्पष्टवादिता के अतिरिक्त रामो के शृङ्गार-वर्णन की एक अन्य विशेषता यह है कि लेखक का ध्यान केवल पात्र के शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण की ओर ही अधिक नहीं रहा है अपितु मनोदशा का वर्णन भी उनमें अत्यन्त मनोयोग पूर्वक किया है। आदि काव्य में इस प्रकार मानसिक मधुर्य का चित्रण मिलना एक निजी महत्व रखता है। कवि ने मानसिक मधुर्य के चित्रण में व्यर्थ की सोचान्तानी भी नहीं की है अपितु गिने-चुने शब्दों के द्वारा ही पूरे का पूरा चित्र प्रस्तुत कर दिया है। कवि इस प्रकार के चित्रण

में जितना निदरुण है उसका परिचय दो तीन उदाहरणों से मिल जाएगा । महाराज पृथ्वीराज के प्रागमन की सूचना प्राप्त होते ही नामत लोग अभिराट-नाथ घोड़ी पर चढ़ चढ़ कर चढ़ने के लिए तैयार हो रहे हैं । पद्मिनी की उम्र मगध साम्राज्य की अवस्था जैसी है, वह जितनी आतुर है, तिन प्रकार प्रतिपत्त गवाक्षों में भाँति है, इत्यादि विषय चन्द ने इस प्रकार किया है—

अभिधानिय अभिधान कुँअर चनि चनि हम सज्जति ।
 द्विषन को त्रिष सज्जति चढि गौरव द्वाजन रज्जति ॥
 विलसि अचान कुँअरि बदन मनों राह आचा सुरत ।
 भयति गवधि पल-पल पलकि दिखत पथ दिल्ली सुपत ॥

इसी प्रकार का एक और निम्न देखिए । पृथ्वीराज के प्रागमन के उदगम पद्मिनी एवं निदरुण के अनुमान निरास्य में पूरन के लिए आती है । महाराज पृथ्वीराज यहाँ पहुँचे हैं ही विद्यमान हैं । गौरव-पूजन के उदगम पद्मिनी जैसे ही सुरागर देखती है तो पृथ्वीराज को देखते ही तिन प्रकार चढ़ा, मोड़ तथा उलट-छा आदि भास ने वह जाना उद्रेकित हो उठती है, इत्यादि विषय चन्द ने गिने-गुने शब्दों में इस प्रकार कर दिया है—

फिर देखि देखि अधिराज राज ।
 हँस मुक्त मुक्त कर पट्ट लाज ॥

इस मुद्रा में जितनी आत्मविक्रम और मर्त्यता है, वह ही प्रभाव है । इसके साथ ही देखने योग्य बात यह है कि यदि ने कनका की समानता सक्ति और भास की समानता का भी समुचित परिचय दिया है ।

इस प्रकार हम देखेंगे कि सभी में विभिन्न और भावना और उनके साथ साथ साथ ही निम्न आत्मविक्रम इन ने जाने वाली आत्म-भावना पर ही मर्त्य-ता समानता के समान है । इसमें सभी की समानता और भी अधिक तात्पर्यपूर्ण है कि जिस विषय का कुछ नहीं दिया । इसमें ही और इसमें ही भावना की समानता का ही विषय का दिया गया है । इसके ही उदगम भावना की समानता की समानता है जिसमें ही समानता, समानता

और मातृ-भूमि के लिए अपने प्राण हँसते हुए दे दिए। इसमें तो सती चिताओं की लपटों और वीर-योद्धाओं के रक्त की लालिमा की गौरवगाथा सतियों और योद्धाओं के आत्म-बलिदान के साथ अमर है। और इन सभी विशेषताओं के कारण हम कह सकते हैं कि वीर और मधुर भावों का ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी चित्रण और समन्वय अन्यत्र मिलना कठिन है।

प्रश्न १३—निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(क) रासो के विभिन्न रूपांतर (ख) भट्टायत संवत् और अनद संवत्
(ग) चंद तथा भूषण का चोर काव्य (घ) रासो काव्यों की विशेषताएँ।

(क) रासो के विभिन्न रूपांतर—हिन्दी साहित्य के इतिहास में जितना विवाद-ग्रस्त विषय पृथ्वीराज रासो का रहा है, उतना कोई अन्य नहीं। फलतः इस दिशा में अनुसंधाताओं ने अपने अथक परिश्रम के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रदान किए हैं जिनमें 'रासो के विभिन्न रूपांतर' उल्लेखनीय हैं। ये विभिन्न रूपांतर इस प्रकार हैं—

१. बृहत् रूपांतर—इसकी प्रतियाँ उदयपुर में हैं। नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित सम्करण भी इसी रूपांतर का है। इसमें कथा प्रमग और वर्णन विस्तार सबसे अधिक है। इसकी उपलब्ध नवमे प्राचीन प्रति मयत् १७६० की है। श्री ५० मोतीजान जी मनेरिया इसी प्रति को सबसे प्राचीन मानते हैं।

२. मध्यम रूपांतर—प्रबोहन और पंजाब विश्वविद्यालय के ओरियंटल पुस्तकालय में सुरक्षित प्रतियाँ मध्यम रूपांतर की हैं। नोनन के श्री महा-महोपाध्याय ५० मयुरा प्रसाद जी दीक्षित ने इसके कुछ अंश का मध्यम रूपांतर न व भाग्य कर प्रकाशित भी कराया। आपके कथनानुसार इसमें मात हजार पाठ (आर्या छंद के हिसाब में) हैं। इसकी प्राचीनतम प्रति के लिए कहा जाता है कि यह मयत् १६७३ की लिखी हुई है।

३. लघुरूपांतर—इसकी प्रतिनिधियाँ बीकानेर के अनुप मन्मृत विद्यालय में हैं। श्री नरोत्तम स्वामी आदि विद्वानों ने इसकी पर्याप्त चर्चा की है।

४ लघुतम स्पातर—उमड़ी केवल एक प्रति गुजरात के धारगोज गाँव में श्री मुनिजिनविजय जी मूरी को प्राप्त हुई ।

हमलिखित प्रतियों के विवरण से पता चलता है कि लघुतम स्पातर की दो लघु स्पातर तो पान, मध्यम स्पातर की ग्यारह तथा बृहद् स्पातर की तीसरी प्रतियाँ उपलब्ध हैं । प्राप्य समाचारों के अनुसार श्री नानुराम मठ और मुनि कान्तिमागर के पान भी रागों की प्रतियाँ हैं किन्तु ये प्रतियाँ किसी ने देखी नहीं हैं । पत्रत यह कहना पड़ता है कि ये किस स्पातर की हैं ।

इन हमलिखित प्रतियों की चार स्पातरों में विभाजित करने का भी एक सूत्र पाया है और वह यह कि सभी प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से कुछ ऐसे सामान्य प्रसंग मिलते हैं जो सभी प्रतियों में लिपिबद्ध हैं और इन प्रकार न एक प्रसंग का दोष पड़ता है । लघुतम स्पातर के प्रायः सभी छह तथा मध्यम स्पातरों में हेन फेर के साथ लघुस्पातर में मिल जाते हैं और इसी प्रकार में पान के मध्यम तथा मध्यम के बृहद् में । परिमाण और विन्हा भी दृष्टि से बृहद् स्पातर मध्यम का तिगुना है, मध्यम स्पातर लघु का तिगुना है और लघु लघुतम का तिगुना प्रतीत होता है । दोतावर के प्रतिपाद विचारों का विचार है कि दूरा रागों लघुतम स्पातर हैं और उनी में वसन प्रक्षेप होता तथा तथा किन्तु उक्तपुर के गव मोहन सिंह साहि जी धारणा हीन लिखित हैं । ये बृहद् स्पातर को तो मूल रागों मानते हैं किन्तु वेय स्पातरों को प्रस्ता मध्ये मानते हैं ।

काली नागरी प्रचारिणी सभा ने पृथ्वीराज रागों का जो सारांश प्रकाशित हुआ है वह बृहद् स्पातर की प्रतियों पर ही आधारित है और इसका जो सामान्य समीक्षात्मक सौभाग्य के लिये बना हुआ है वह भी बृहद् स्पातर के ही अनुसृत है । काली प्रचारिणी सभा ने अपनी व्याख्यात्मक प्रति का विविभाग म० १६४० का १६४० बताया है परन्तु वास्तविक तथ्यों के अनुसार बता पाया है कि इसे अथवा म० १६४० का ६० पर लिखा गया । श्री लखन पद नाटय जी के अनुसार उक्त म० १६४० लेख पाहिए किन्तु कोटिका जी

उस प्रति को १८७७ की बतलाते हैं। डा० नामवर सिंह के अनुसार वे सख्याएँ १७६७ प्रतीत होती हैं। उदयपुर में इस बृहद् रूपांतर की प्रामाणिक प्रति महाराणा श्रमरसिंह द्वितीय के पास है जिसमें लिपि-काल माघ कृष्ण ६ नोमवार म० १७६० वि० है।

रासो के लघुतम रूपांतर की जो पूर्ण प्रति प्राप्त हुई है उसका लिपिकाल म० १६६७ वि० है। इसकी पुष्पिका में दिन का उल्लेख नहीं है। यदि यह प्रति प्रामाणिक है तो निश्चय ही पृथ्वीराज रासो की प्राप्त प्रतियों में सबसे पुरानी है। डा० नामवर सिंह का कथन है कि बीकानेर से श्री नरोत्तमदाम जी स्वामी इसका नपादन करके शोध ही प्रकाशित करवाने जा रहे हैं।

(ख) भटायत और अनन्द सवत्—कर्नल टॉड, कविराज श्यामलदाम, मुरारीदीन आदि विद्वानों के द्वारा जब रामो मन्वन्धी इस मत—रासो में दो गई घटनाएँ सही नहीं हैं तथा सवत् आदि भी अशुद्ध हैं—की स्थापना की गई तब प० मोहनलाल विष्णु लाल पाण्ड्या ने रामो को प्रामाणिक मानने के हेतु भटायत सवत् की कल्पना कर ली। उन्होंने अपनी इस कल्पना का आधार यह बताया कि प्राचीन समय में दो सवत् प्रचलित थे। एक पक्ष वाले तो विक्रम के जन्म से सवत् का आरम्भ मानते थे जबकि भाट, चारण आदि विक्रम की मृत्यु से—जो उनके कथनानुसार तीस वर्ष बाद हुई—सवत् को शुरू मानते थे। इस प्रकार पहला सवत् तो शास्त्रीय सवत् के रूप में जनता में प्रतिष्ठा पा गया परन्तु दूसरे को केवल चारण, भाट आदि ने ही अपनाया। फलतः वह भाटों का सवत् या भटायत सवत् कहलाया। यह सवत् दिल्ली और अजमेर के अन्तिम चौहान सम्राट के राज्य काल तक तो प्रचलित रहा किन्तु चौहान साम्राज्यों की समाप्ति के उपरान्त शास्त्रीय विप्रम सवत् का प्रचलन ही रहा। पाण्ड्या जी का कथन है कि यदि नियमानुसार रामो के सवत् की परीक्षा की जाए तो प्रत्येक म्यान पर १०० वर्ष का ही अन्तर मिलेगा। किन्तु पाण्ड्या जी की इस कल्पना के विरोध में अनेक आपत्तियाँ उठाई गईं। इन आपत्तियों में सर्व-प्रमुख यह थी कि पृथ्वीराज रामो में पृथ्वीराज चौहान का जो मृत्यु

मवत् शिया गया था उसमें १०० वर्ष जोड़ देने पर भी ठीक मवत् का ज्ञान नहीं होता । रामों में दिए गए मवत् में १०० वर्ष जोड़ देने पर भी पृथ्वीराज का ठीक मृत्यु मवत् उनमें भी-नो या दस वर्ष पीछे आता है । इस घन्तर को मिटाने के लिए पाण्डवा जी ने पृथ्वीराज रामों में दिए गए पृथ्वीराज के जन्म-मवत् सम्बन्धी दोहे—

एकादश सै पचदश विक्रम साक अनन्द ।

तिदि रिपुजय को भए पृथिराज नरिंद ॥

के आधार पर अनन्द मवत् की कल्पना की । उन्होंने इन दोहे का अर्थ इस प्रकार शिया—प्र = प्रथम घोर नर - ६ अर्थात् ६० वर्ष गति विक्रम मवत् । उन्होंने कहा कि विक्रम मवत् में से ६० या ६१ वर्ष घटा देने से 'पृथ्वीराज रामों' में दो हुई त्रिविधा गुरु निकल आती है घोर ६०-६१ वर्ष पीछे रहने का कारण यही है कि रामों में विक्रम मवत् का प्रयोग न करके अनन्द मवत् का प्रयोग किया गया है । लेकिन उन्होंने ये ६० वर्ष तिन लिए घटाए इसका कोई मौलिक उत्तर नहीं दिया है । इसके लिए तो उन्होंने इतना ही कहा है—
नव वशी शूद्र घे, हमलिए उनका राजत्व फाल राजपूत भाटों ने निहान दिया ।

लेकिन आज इस मवत् को जिनो विमोघ मान्यता की प्राप्ति नहीं है । इसका मूल कारण १८० गोरामगर हीराचन्द सोनी, सागावं रामचन्द्र गुल आदि जरा प्रसूत की गई निम्न युक्तियाँ हैं—

१. रामों में दिए गए रामों में प्रत्येक जन्म पर ६० या ६१ वर्ष का समय नहीं है । राम पाण्डवा जी पहले तो १०० वर्ष का घन्तर बताते हैं जो फिर ६० या ६१ वर्ष का घन्तर बताते समझें ।

२. 'विक्रम साक अनन्द' के घन्तर घन्तर के अर्थ में जो मौलिकता की गई है वह एकदम विरुद्ध ही भावना है ।

३. 'विक्रम साक अनन्द' का अर्थ यदि है अनन्द मवत् की घोर - घोर का अर्थ है—मौलिक प्रामाणिक रूप में नहीं कहा जा सकता क्योंकि रामों में

उल्लिखित सवत् में एक निश्चित अन्तर नहीं है। अतः रासो में किसी विशिष्ट प्रचलित सवत् का प्रयोग किया गया है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

४. यदि अनद सवत् की कल्पना को सत्य मान लिया जाए तो डा० दशरथ शर्मा आदि की नवीनतम खोजों को हमें भ्रामक मानना होगा क्योंकि यदि रासो में ६० या ६१ वर्ष के अन्तर वाले अनद या विक्रम सवत् का प्रयोग किया गया है, तो लघुतम प्रति में दिए गए सवत् क्यों प्रचलित सवत् से मिल जाते हैं ?

(ग) चन्द्र तथा भूपण का वीर काव्य—चन्द्र हिन्दी के आदि काल के प्रतिनिधि कवि हैं और भूपण रीति काल के वीर रस के प्रमुख कवि हैं। इस प्रकार दोनों दो विभिन्न युगों की, विभिन्न राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की, विभिन्न साहित्यिक वानावरण की देन हैं। किन्तु फिर भी कितने ही ऐसे कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन का विचार हमारे अन्तर्मन में उठा करता है। फलतः आगामी पक्षियों में हम इन दोनों का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करेंगे। अस्तु!

चन्द्रवरदाई और भूपण दोनों ने ही वीर काव्यों की रचना की है। दोनों ही ने अपने काव्यों में वीर भावना का प्रदर्शन अपने नायकों की वीरता, आतंक, निर्भीकता, नाहम तथा आत्म-बलिदान के चित्रण में किया है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से वीर चार प्रकार के होते हैं—युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर तथा दानवीर, पर इन दोनों लेखकों ने युद्धवीर को ही प्रमुख रूप से अपने वर्णन का आधार बनाया है। अपने अपने नायकों की दानवीरता का वर्णन भी उन्होंने अत्यंत मनोयोग के साथ किया है, पर नायकों के आश्रयदाता होने के कारण दोनों ही के काव्य में कहीं कहीं चाटुकारिता की गंध आने लगती है।

चन्द्रवरदाई और भूपण दोनों ही कवियों ने मुद्रा चित्रण में अपने काव्य-कौशल का पक्षीय परिचय दिया है। यदि चन्द्रवरदाई अपने नायक पृथ्वीराज की स्फूर्ति का चित्रण इन शब्दों में करते हैं—

उट्टि राज प्रथिराज याग लग मनो वीर नट ।

कढ़त तेग मन घेग, लगत मनो वीज कट्ट घट ॥

तो महाकवि भूपरा अपने नायक सिवा जी के मानक का वर्णन और भी अधिक मनोयोग पूर्वक करते हैं । सिवाजी के साधनरूप की सूचना मिलते ही दाम्पत्यियों कितनी व्याकुल और मयभीत हो उठती हैं, इसका एक चित्र देखिए—

आगरे अगारन तँ फाँदती फगारन छुर्यँ,

घाँवती न चारन मुगन कुन्हलानियाँ ।

फीत्री वहे कड़ा आँगरीवी गहे भागी जायँ,

ओधी गहे सुयनी ओँ, नीवी गहे रानियाँ ।

वस्तुतः इन प्रार के वर्णनों का पढ़ कर तो ऐसा प्रतीत होता है कि वे कवि मुद्रा विशेष के सूक्ष्मानिगूह्य हाव-भाव की पहचानने और उसका शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में निरहन्त थे ।

किंतु इन समानताओं के साथ ही एक तात्त्विक घावर भी है जो— वह यह कि नरद्वन्द्वरसों ने अपने काल का सामान्य महाकाव्य को गता है वहाँ भूपरा ने अपने काव्य की रचना भूतक रूप में की है कता नरद्वन्द्वरसों के काव्य में जहाँ जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं वहाँ भूपरा के काव्य में एक स्थिता है ही ।

नर तथा भूपरा के काव्य में तात्त्विक घावर व्युत्पन्न करने वाला प्रार उपादान समकालिता का है । नर के काव्य में घनकाव्य का प्रयोग हुआ तो है किंतु घनत मरत रूप में । इसी घनकाव्य उक्ति की परम्परा है जो घनभार प्रोवा है कि कवि ने घनकाव्य के लिए तात्त्विक को रचना की की है किंतु घन-कार रूपों उक्ति में मिलता जाग थाका है । कस्तुन नर ने अपने काव्य-प्रवादा में कताकाव्य को प्रयोग भाग्यक पर अधिकार दित है किंतु वहाँ की घन-कार का प्रयोग हुआ है जो उक्ति घनकाव्य की प्रकृति तत्त्व पर है—

एवै पदार मनो मार के भिरे मुगान न गननेन पर ।

आये हँतारि हार करि मुगमान मुलमान द्य ॥

किंतु भूपरण ने अर्पनी प्रशसात्मक उक्तियों में प्रायः सर्वत्र अतिशयोक्ति तथा अत्युक्ति का महारा लिया है। कहीं-कहीं तो इसके कारण उनकी उक्ति में कृत्रिमता ही नहीं आ गई है अपितु हास्यास्पद भी हो गई है। यथा एक स्थल पर उन्होंने शिवाजी और औरंगजेब (उपमेयों) को क्रमशः इन्द्र और कृष्ण की उपमा दी है, फिर शिवाजी को मस्त हाथी की उपमा दे दी गई है (भूपरण ग्रंथावली छ० ३४)। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह उपमा अनुचित ही नहीं पूर्णतः हान्यान्पद है।

किंतु इन सभी तात्त्विक अंतरों के अपने-अपने कारण हैं। चंद्रवरदाई जहाँ ऐसे युग में पैदा हुए थे जिसमें वीरत्व का बोलवाला था वहाँ भूपरण का युग ही दूसरा था। उनके युग में तो सर्वत्र विलासिता की लहर ही प्रवाहित थी। राज्याश्रित सभी कवि शृङ्गार-पूर्ण ग्रंथों की रचना में ही लगे हुए थे। ऐसे समय में भूपरण ही एक ऐसे अपवाद थे जिन्होंने अपने काव्य का नायक छत्र-पति शिवाजी और महाराज छत्रसाल जैसे वीरों को बनाया और वीर-रसपूर्ण काव्य का प्रणयन किया।

✓ (घ) रासो काव्यों की विशेषताएँ—हिन्दी साहित्य के आरम्भिक दिनों में राजपूत राजाओं के आश्रय में रहने वाले कवियों ने एक विशेष प्रकार के काव्य लिखे जिनके अन्त में प्रायः 'रासो' शब्द जुड़ा रहता था। इस 'रासो' शब्द का वास्तविक अभिप्राय क्या होता था इस सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। किन्तु इतना होने पर भी रामो ग्रन्थों के अनुशीलनोपरांत उनकी विशेषताएँ स्वतः स्पष्ट हो जाती हैं यथा—

१ इन कवियों का मूल लक्ष्य शोनाशो अथवा पाठकों के हृदय में गिनी रत्न-विशेष का संचार कराने की ओर है। इन रस योजना में भी कवियों को वीर और शृङ्गार ही अधिक प्रिय हैं। मूलतः तो वीर रस की योजना में ही कवि की प्रवृत्ति अधिक लीन हुई है किन्तु शृङ्गार रस को उसने सहायक रूप में अपना लिया है।

२ रासो काव्यों की दूसरी विशेषता बनेवर का विस्तार है, वर्णनों की

प्रतिष्ठा है। नाया के जीवन में जितनी भी घटनाएँ घटती हैं उनका इतना व्यापक तथा विस्तृत विवरण अन्यत्र कम देने की मित्या है। इतना ही नहीं इन सभी पात्रों में अप्रच्युत नायकों को एकरूप करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। प्रच्युत प्रच्युत नायकों को उनकी है ति पाठक उत्तर। सुखी-मात्र बनाकर एकरूप करने वाले के लक्ष्यविषयक ज्ञान और अनुभव पर चरित हो जाता है। यदि रस-भूमि है तो कवि बनकवेगा कि तित तित देन में मेला आई है मेलापति का नाम क्या है, उसका रूप कैसा है घोष की जाति क्या है, मर्यादितता है आदि आदि। वस्तुतः ये वर्णन उन बातों के साथी हैं कि राजा कायकार कोने कवि ही न थे अपितु जिन बातों का वर्णन करते थे उसी अनुभूति भी उनके होती थी। यद्यपि हमने पहले ही कि बहुत-सी बातें अनुभूत न होकर प्रतिभाजनित या गल्पना में उत्पन्न भी रही होती।

३. सभी पात्रों की तीव्रता मूल विशेषता यह है कि इन पात्रों का स्वभाव मनुष्यता न होकर व्यापक है। उनमें 'कवि के मत्व' के नाम की मात्र निहान-मान का साथ भी भवकता है। इन पात्रों की पदचालें भारतीय स्वभाव में तो गहरी हैं ही, यथार्थ जगत में भी निताप निग्या नहीं हैं।

४. सभी पात्रों की चीनी विशेषता भाषा विषयक है। अपने-अपने में सभी पात्रों की भाषा की बनावटों बतलाया है। चीन स्वभाव भाषा उन्होंने यह किया है कि सभी पात्रों की भाषा में एकत्वता नहीं है। एक ही पात्र में दो विचार भिन्न प्रमाण की भाषाएँ दिखलाई पायी हैं। वस्तुतः हमारे महाकवि का साथ सभी पात्रों के लिए भूतक मूल ही है, प्रमाण नहीं। वस्तुतः सभी पात्रों की मर्याद विशेषता है कि वे कि भाषा के लक्ष्य-भेद भाषा धारणी है, भूतक में एक ही मूलक में मूल्य है। सभी पात्रों में भिन्नता तो नहीं है कि स्वभाव, यदि विशेषता पात्रों के लक्ष्य में नहीं, कि देना देना है।

५. सभी पात्रों की पदचालें विशेषता की विशेषता है। यदि वे पदचालें स्वभाव की मूलक बताते हैं कि भिन्न भिन्न प्रमाण के लक्ष्य की। स्वभाव की

प्रयोग तो अवश्य किया है किन्तु कही पर भी अम्बामाविकता या कृत्रिमता नहीं माने दी है। साथ ही उत्प्रेक्षा तथा अत्युक्ति अलंकारों के प्रयोग में साहित्यिक परम्परा का कौशल न दिखा कर अनुभूति ज्ञान को ही प्रमुख रखा है।

६ रामो काव्यो की छठी विशेषता काव्यरूप तथा कथा-विन्यास से सबद्ध है। मस्कृत में प्रबध काव्य लिखने की यह प्रणाली थी कि सारी कथा को काण्ड, सर्ग या अध्यायो में इस प्रकार विभक्त कर दिया जाता था कि नायक-नायिका के जीवन में काल-क्रम का निर्वाह हो सके। अर्थात् कवि नायक के जन्म से लेकर अन्त तक की घटनाओं का क्रमशः वर्णन करता था, नारी कथा के कुछ भाग हो जाते थे, प्रत्येक भाग का नामकरण भाग विशेष की सबसे महत्वपूर्ण घटना पर हो जाता था। रामायण में वालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड आदि का विभाजन इसी प्रथा पर किया गया है। किन्तु रामो काव्य में ऐसा नहीं होता। इनकी कथा प्रत्येक घटनास्थल पर अपना नया गण्ड पर्व या समय प्रारम्भ करती है, भले ही एक गण्ड या समय केवल कुछ ही छंदों में हो जाए और दूसरे खण्ड में कथा अनेक पृष्ठों और सैकड़ों छंदों तक चलती रहे।

मस्कृत में महाकाव्य के लिए मध्यम विस्तार के आठ से अधिक सर्गों की अपेक्षा है यथा—

नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अप्राधिका ।

—(साहित्य दर्पण)

यदि कथा में एक नायक का वर्णन न होकर एक पूरे वन का वर्णन हुआ (जैसा कि गधुवन में है) तो सर्गों की संख्या २० के ग्रामपाम ही देनी गई है परन्तु न तो यह मिलता है कि सर्गों के विस्तार में उतनी विषमता हो और न सर्गों की संख्या ६६ तक पाई जाती है—आश्चर्य तो यह है कि रामो काव्य केवल एक ही राजा के यशोगान में उतने सर्ग (गण्ड, पर्व या समय) लगा देते हैं जितने रा साहब एक पूरे वन का वर्णन करने वाले मस्कृत महाकाव्य भी न कर सके। अनेक विद्वानों ने रामो काव्यो की इस विशेषता को एक दोष

माना है किन्तु हमारा विचार यह है कि जो दोष सभी ग्रंथों में मिले उसे उनका विशेष लक्षण समझना चाहिए ।

७ रागों काव्यों की नाचवी और अन्तिम विशेषता यह है कि उनका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर भी पड़ा है । रागों काव्यों और नूकी प्रेम काव्यों की तुलना करते समय तो यह तथ्य और भी अधिक सुप्रसिद्ध हो उठता है । जायसी के पद्मावत में क्या या गच्छों में जो विभाजन पाया जाता है उनमें रागों काव्यों की इसी परम्परा का निर्वह है । यहाँ भी एक ही नायक का वर्णन ५७ पञ्चिष्टों में है और प्रत्येक को खण्ड ही नाम दिया गया है । गच्छों के नाम में प्रसन्न विषमता है तथा गच्छों महाकाव्य परम्परा की व्यवहृतता है । ऐसा जान पड़ता है कि पद्मावत में भी रागों काव्यों की परम्परा का निर्वह है जिसे गुनन जी ने सम्मत महाकाव्य परम्परा से निम्न देगाकर मननवी शैली पट्ट दिया है ।



आदि पर्व

आदि देव प्रमन्य गुरय, वानीय चटे पथ ।
 निष्टं धारय धारय वमुमती, लब्ध्वा चरनाश्रय ॥
 त गु निष्टनि ईम दुष्ट दहन, गुरनाथ निष्टिधय ।
 धिर चर जंगम जीव चर नमय, नर्वेस वदीमय ॥१॥

शब्दार्थ—आदि देव -- आदि देव, प्राचीन परब्रह्म, प्रमन्य -- प्रणाम कर
 के, गुर -- गुरुय को, वानीय -- वानी, चटे = चढ़ना करना है, पथ = पथ;
 निष्ट -- निष्टि को, लब्ध्वा = चढ़ा के पति, निष्ट, त गु -- तगाहवा को;
 दहन - दहन करने वाले, धिर == स्थिर ।

प्रमन्य—इस पद में कवि ने तीन बार देवी देवताओं की स्तुति की है ।
 कवि का वचन है कि—

को वदना को है । अपने इना भाव को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए कवि ने चतुर्थ पक्ति में चित्र, वर और जगम शब्दों का प्रयोग किया है ।

प्रथमं भुजगी मुचारी ग्रहन । जिने नाम एक अनेकं कहन ॥
दुती लभभय देवत जीवतेसं । जिने विश्व राख्यौ बली मंत्र सेसं ॥
चव वेद बभ हरी कित्ति भाखी । जिने धम्म साधम्म संसार साखी ॥
तृती भारती व्यास भारत्य भाख्यौ । जिने उत्त पारथ्य सारथ्य साख्यौ ॥
चवं सुखदेव परीखत्त पाय । जिने उदर्यो श्रव्व कुर्वस रायं ॥
नर रूप पचम्म श्रीहर्ष सारं । नलैराय कंठं दिने पद्ध हार ॥
छट कालिदाम सुभाषा सुबद्ध । जिने वागवानी सुवानी सुबहं ॥
कियो कालिका मुखव वासं सुमुद्ध । जिने सेत वंध्योति भोज प्रबधं ॥
सतं डडमाली उलाली कवित्त । जिने बुद्धि तारग गंगा सरित्तं ॥
जयदेव अठ्ठ कवी कव्विराय । जिने केवल कित्ति गोविंद गायं ॥
गुर सव्व कव्वी लह चंद कव्वी । जिने दसिय देवि मा अंग हव्वी ॥
कवी कित्ति कित्ती उकती सुदिखी । तिने की उचिष्टी कवी चद भखी ॥२॥

शब्दार्थ—भुजगी=भुजग प्रयान् आदि छंदों में वद्ध ईश्वर का छंदोमय रूप, भुजगी मुचारी ग्रहन=भुजग को मुचारने वाले अर्थात् काली नाग को नाचने वाले अर्थात् विष्णु रूप श्री कृष्ण भगवान, भुजगी=भुजग रूप अर्थात् शेष-नाग के रूप में विष्णु, भुजगी ग्रहन=भुजगों को ग्रहण करने वाले अर्थात् शिवजी, दुती=द्वितीय, देवत जीवतेन=देवताओं के भी जीवतेत अर्थात् श्रद्धा, बली=बल से, सेन=सेन, चव=चारों, बभ=कहने वाला, कित्ति=कीर्ति, भाखी=गाई गई है, भारत्य=महाभारत, सुखदेव=सुखदेव मुनि को, पनीयन=गजा परीक्षित को, श्रव्व=नारे, कुर्वस=कौरव वध, जिने वागवानी सुवानी सुबद्ध=जिन्हें सुंदर वाणी अर्थात् नगस्वनी या वरदान प्राप्त था, गुर=गुरु, बडे, लह=लप, छोटा, उचिष्टी=भूटन ।

प्रसंग—प्रस्तुत छंद में कवि ने अपने से पूर्व कवियों का सम्मान किया है । शतना ही नहीं अपने में पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों के समान ही अपनी

दीनता के भाव को भी प्रकट किया है। पवि ने इन छंद में भुजग प्रयात छंद का प्रयोग किया है और पूर्ववर्ती पविरो के समान उमाती भी प्रकट की है। परंतु, भुजगी शब्द के स्नेहायक होने के कारण इस पविन के कई अर्थ लिए जा सकते हैं।

प्रनुवाद—मैं प्रथम में भुजग प्रयात आदि छंदों में वल ईश्वर के छोड़-कर स्व को जो इन मंगार में सबसे सुष्ठु है प्रणाम करता हूँ, अथवा मैं सर्व प्रथम उन परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने भुजग को सुधारा था अर्थात् कार्त्तिकाय को नागने वाले विष्णु रूप श्रीरुद्र भगवान् को नमस्कार करता हूँ अथवा भुजग रूप अर्थात् शेष-नाग के रूप में जो विष्णु हैं उनका स्मरण करता हूँ अथवा सभी को ग्रहण करने वाले शिवजी को नमस्कार करता हूँ जिनका एक नाम है तथा स्मरण करने की प्रणाली अनेकों हैं।

द्वितीय स्थान पर मैं देवताओं के भी जीवतेन, अर्थात् प्रज्ञा को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने अपने मन में मंगार के अद्वय मंत्रों को शेष रक्खा है। (उन) पारो वैद्यों को माने जाना है (निर्मल) ईश्वर की कीर्ति गाई गई है, जिनको अनेकानेक पदों का मंगार गाया है।

तृतीय स्थान पर मैं उन वेदव्यास जी का स्मरण करता हूँ जिन्होंने वाणी में काव्यात्मक रक्ता है; जिनमें श्रीरुद्र का भी स्मरण किया गया है।

चतुर्थ स्थान पर मैं भुक्तदेव मुनि का और राजा परीक्षित का ध्यान करता हूँ जिन्होंने गाते तीर्थ वन का उद्धार किया।

पंचम स्थान पर गरुड राजा श्री हंस का स्मरण करता हूँ जिनको राजा मंत्र की वसा को काटना था दिया।

छठे स्थान पर मैं ऐन काव्यिदास का स्मरण करता हूँ जिन्होंने अद्वय वाणी अर्थात् सत्त्वगुण का अद्वय प्राप्ति था, जिन्होंने मुक्त भाव में सत्त्व-गुण को है श्री-श्री प्रबंध में भी उनमें से सुष्ठु वाक्य रक्खा था प्रस्तुत किया है।

सप्तम स्थान पर इस शर्मा का स्मरण करता हूँ जिसका यह काव्यिक अर्थ है और जिस के सन्निध्य में प्रणि शक्त उसी प्रकाश के अर्थ में वाक्यात् उत्पत्ती होती है जिस प्रकाश में मंगार में उल्लिखित।

अष्टम स्थान पर उस कविराज जयदेव का स्मरण करता हूँ जिनकी कीर्ति का मेरु दण्ड केवल गीति गोविंद है ।

अतत उन सब कवियों को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने शैशवावस्था में ही सार-स्वर-बोध नामक ग्रंथ सीख लिया था ।

कवि चंद्रवरदाई अतत अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि पूर्ववर्ती कवियों में बड़े बड़े कवि हुए हैं जिनके काव्य में बड़ी मुदर सुदर उक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं परंतु मैं छोटा हूँ और उन्हीं की भूठन को मैंने कह दिया है ।

उचिष्ट चंद्र छंदह वयन । सुनत सु जपिय नारि ॥

तनु पवित्र पावन कविय । उक्ति अनूठ उधारि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—छंदह=छंद मवधी, वयन=वचन, जपिय=बोली, तनु=शरीर, कविय=कवित्त, उक्ति=उक्तियाँ, उधारि=उद्धार ।

अनुवाद—कवि चंद के छंद मवधी वचनों को उच्छिष्ट मुन कर चंद्रवरदाई की पत्नी बोली—आपके छंद शरीर को पवित्र करने वाले हैं, उनमें अनूठी उक्तियाँ हैं और जो उन्हें सुनता है उसका उद्धार हो जाता है (अतः आप उन्हें उच्छिष्ट क्यों कहते हैं । वस्तुतः आप उच्च कोटि के कवि हैं ।)

कहैं कति सम कंत । तंत पावन वद कविय ॥

तंत मंत उच्चार । देव दरसिय मीम हविय ॥

तत वीर उग्रत । रण राजन सुख दाइय ॥

बाल केलि प्रत्यग । सुरनि उद्धरि कविताइय ॥

अवलव उक्ति उच्चार करि । जिहित मोहि कोविद रहै ॥

सम ब्रह्मरूप या सच्च कहैं । क्यों उचिष्ट कवियन कहैं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कति=पत्नी, कंत=पति, तंत मत=तन-मन; देवि=मरस्वती देवी, दरसिय=दर्शन दे देनी है, राजन=राजाओं को, दाइय=देने वाली है, बालकेलि=बाल-कैनि, बाल ग्रीडाएँ, सुरनि=देवताओं का, उद्धरि=उद्धार, अयनम्ब=अयनम्बन; गोविंद=विद्वान् ।

अनुयाय—कवि-पत्नी पति से पुन कहती है कि आपकी वाणी अर्थात् कविता तप-मथ से मुक्त है और जो कोई आपके वाक्य का अनुशीलन कर लेता है उसके हृदय में मायात् मरम्भती देखी के दर्शन हो जाते हैं। आपकी कविता को पढ़ कर वीर लोग युद्ध में प्रवृत्त रूप धारण कर लेते हैं। (यत्) बड़े-बड़े यन्त्रियों राजाओं को भी मुग देने वाली है। उनमें बाल-गोष्ठियों का वर्णन है फलतः उनके द्वारा अन्तर्गत में वात्सल्य रस की उत्पत्ति हो जाती है। सुन्दर सुन्दर जड़ों के द्वारा यह श्रोता का पश्य देवताओं के हृदय का भी उद्घाटन करने वाली है। आपकी उक्ति का अचलन्यन करने पश्चात् उन्मात्ता पत्नी बड़े बड़े विद्वान भी मुग्ध होकर रह जाते हैं। अतः यदि ऐसे सुन्दर, प्रगल्भ और शब्द-प्रज्ञ काव्य का प्रगल्भ करने के उपरान्त भी अपने को दूरे पवित्रों का उच्छिष्ट कर्षा स्वीकार करते हैं।

नम वनिता वर वदति । चन्द जपिय कोमल रत्न ॥
 मयद भाग्य इह सति । अपर पावन वदि निर्मल ॥
 जिहित शब्द नहि रूप । गेय आकार वन्न नहि ॥
 अकल प्रगाथ अपार । पार पावन वचनुर मदि ॥
 तिहि मयद भाग्य रचना करौ । गुरु प्रसाद मरनें प्रवन ॥
 जगपि सु उक्ति चूको जुगति । ती कमल वदनि रचितइ एखन ॥ ५ ॥

मन्त्रार्थ—मम—ममान; रजिता—रानी, वर—ध्यात, कदि—दीना,
 मोमल मर—मन्द, मो मे, सारद—सद्य, दल्ल—परी, प्रतपुर—तीनों
 मोर प्रमा—प्रमाता, कमल-वदनि कमल के गजान मुग यात्री, कदि-
 तहि—कदिता ।

[illegible]

शब्द ब्रह्म की रचना अपने गुरु के प्रसाद से की है अतः यह (मेरा काव्य) ब्रह्म सम्बन्धी सभी जिज्ञासुओं को शान्त कर देगा। (चन्द का कथन है कि) हे कमल-वदनी ! यद्यपि मेरा उद्देश्य सुन्दर उक्ति कहना ही है किन्तु किसी उक्ति में भूल कर जाऊँ तो कविगण मेरा हास्य करेंगे। (अतः मैंने ऐसा कह दिया है।)

तुम बानी वरवद । नाग देखंत विमल मति ॥
छंद भंग गन रहित । कंठ कौमार काव्य कृत ॥
बुधि तरंग सम गंग । उक्ति उच्चार अमिय कल ॥
सुरन सुनत विहसंत । मंत जनु वस्य करन बल ॥
अवतार भूप प्रियिराज पहु । राज सुख तिन सम लहहि ॥
वीराधि वीर सामत सब । तिन सु गल्ह अच्छी कहहि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—बानी = वाणी, सरस्वती, वर = श्रेष्ठ, वंद = वदनीय, नाग = नाग जाति, देखंत = देखने में, विमल = स्वच्छ, मति = बुद्धि, सम = समान, गग = गंगा, अमिय = अमृत, वस्यकरण = वशीकरण, गल्ह = वात।

अनुवाद—पति के वचनो को सुनकर पत्नी का कथन है—

तुम वाणी अर्थात् सरस्वती के वरदान से युक्त तथा वदनीय हो अथवा तुम विद्वानों के द्वारा वदना करने योग्य हो। देखने में इतने सुन्दर हो जैसे नाग जाति और बुद्धि तुम्हारी बड़ी सुन्दर है। तुम छंद—दोष और जगण रहित काव्य रचना करते हो। तुम कुमारवस्था से ही काव्य रचना करने लगे हो। तुम नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा वाले हो और तुम्हारी प्रतिभा गंगा की तरंग के समान नई नई कल्पनाओं में उद्बुद्ध होती है। तुम्हारा उच्चारण भी अमृत की कला के समान है। तुम्हारी कविता को सुनकर देवता भी हर्षित होने हैं और वह श्रोता को वशीकरण मंत्र के समान अपने वश में कर लेती है। मामन्त लोग भी जब आपकी कविता को सुनते हैं तो अच्छी बताने हैं।

गज गवनी प्रति चट । छंद कोमल उच्चारिय ॥
मनहरनी रस बेलि । सुरन सागर रस धारिय ॥

वंश नयन वय वाल । प्राण चल्लभ मुत्तदाइय ॥
 अगुन निगुन गुरु प्रहनि । गवरि पूजा फल पाइय ॥
 भण आदि अत कविता जिने । तिन अनत गति मति कहिय ॥
 अनेक प्रन्थ तिन घरनवत । यों उचिष्ट मति मै लहिय ॥ ७ ॥
 शब्दार्थ—गजनाथनी—गज नामिनी, वरु—वध, वय—प्राय, गवरि-
 पूजा=गौरी पूजा, घरनवत=धर्मिन है ।

धनुवाद—महाकवि चन्द्र धनवी उन प्राण-बल्लभ को सम्बोधित करने
 हुए कहते हैं जो मन को हाने वाली, मुख्य करने वाली, रस की ज्ञाता, गुणों
 की सागर है तथा जो बटाक्ष करने में कुशल, छोटी भवन्मा राखी, तमस एवं
 रजन गुणों से विहीन तथा मत्त गुणों से युक्त है, गुरु की बात को जल्ग करने
 वाली है, तथा पावती की पूजा का फल प्राप्त करने वाली है कि धर्ममूर्ती
 आदि कवि बाल्मीकि से लेकर पर्यन्त महाकवि श्री रघु नर से धनवी धनवी
 नवोन्मेषिनी प्रतिभा गरि के धनुवान प्रयाह काव्य मृजना की है अतः इसी
 कारण महाकवि चन्द्र धनवी पुष्पाक को उच्छिष्ट मानते हैं ।

फूलि रिचि बहुमान श्री । जुगनि जुग निवास ॥
 अप्प मनि नरने नवल । मनि करी मरि हान ॥ ८ ॥
 शब्दार्थ—रिचि—कीर्ति, बहुमान=पुष्पोगन शोभन, जुगनि
 जुग—युग युग नर, पत्ता—पत्ता, मनि—मूर्ति, हान—हानी ।

धनुवाद—धनुवरमर्त ता कथन है कि मैंने अपना काव्य रचना के लिए
 ऐसे पुष्पागज की कथा को चुना है जिसकी सीति युगो युगो नर स्पष्ट रहने
 वाली है और जिसमें सदाचार के फल मरि भी मरन हो जाते हैं । अतः मेरी
 कविता को पढ़ने का ता मंग उद्देश्य मनी कर लया ।

पय सक्करी दुभरौ । पयसी फलत राय मोमंकी ॥
 फर कसी गुमरीर । रज्जुरिय नैय जीयनि ॥ ९ ॥
 शब्दार्थ—पय—पय, सक्करी—सक्करी, दुभरौ—दुभरौ, फलत—
 फलती, कसी—कसी, गुमरीर—गुमरीर, रज्जुरिय—रज्जुरिय, जीयनि—
 जीयनि रहती है ।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में कवि ने गूजरी और रानी के भोजन की तुलना के द्वारा अपने और अपने पूर्ववर्ती कवियों की तुलना की है। कवि कहता है कि एक ओर तो सम्पन्न परिवार की रानियों के भोजन की शोभा सुवर्ण थाल में परोसे गए दूध, शक्कर और सुन्दर भात से होती है तो दूसरी ओर गूजरी कासे की थाली में रावडी (मट्ठे में पकाया हुआ ज्वार का अन्न) से होती है तो क्या वह गूजरी जीवित नहीं रहती होगी अर्थात् रहती होगी अर्थात् जिस प्रकार से रानियों के सुवर्ण थाल में दूध, शक्कर और भात का भोजन खाने पर भी गूजरी केवल रावडी पी कर जीवित रहती ही है उसी प्रकार से अन्य पूर्ववर्ती कवियों के सुन्दर काव्य के रहते हुए भी मेरे काव्य का आदर होगा।

सत्त खनै अवास । महिलान मद् सद नूपरया ॥

सतफल बज्जुन पयसा । पच्चरिय नैव चालंति ॥ १० ॥

शब्दार्थ—सत्त खनै = सात मजिले, मद् = मद, सद = शब्द, नूपरया = नूपुर, सत = श्वेत, पच्चरिय = पर्वतीय, नैव = नहीं, चालति = चलती है।

अनुवाद—कवि का कथन है कि जिस प्रकार से सात मजिल के महल में रानियों के नूपुरों के मद मद स्वर होते रहने पर भी गूजरी श्वेत वर्ण मन के वृक्षों की फलियों को पैरों में बाध कर चलना बंद नहीं कर देती उसी प्रकार से अन्य पूर्ववर्ती कवियों के सुन्दर काव्य के रहते हुए भी मेरे काव्य का आदर होगा।

रच्चरियं रस मंद । क्यूं पुज्जति साध अमियेन ॥

उकति जुकत्तिय ग्रन्थं । नयि कथ कवि कत्थिय तेन ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—अमियेन = अमृत, तेन = उसको।

अनुवाद—कवि चन्द का कथन है कि जिन प्रकार से रावडी रसहीन है उसकी अमृत के साथ तुलना नहीं हो सकती किन्तु जिम व्यक्ति को अमृत उपलब्ध नहीं होता वह रावडी को फेंक नहीं देता है ठीक उसी प्रकार से हम मसालों में सुन्दर उन्नतियों तथा युक्तियों आदि से परिपूर्ण काव्य यहाँ नहीं है अर्थात्

मंत्र है किन्तु फिर भी मैं काव्य सृजन कर रहा हूँ जो भले ही उच्छिष्ट प्रतीत हो सकता है ।

याते वसंत मासे । कौकिल मङ्गलार अथ घन करय ॥

वर वन्द्यूर विरप्य । कपोतयं नैव कलयति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—यात वसंत माने वसंत मान के आने पर, अथ=अथवा, वर=वन्द्य, वन्द्यूर=वृक्ष, नैव=नहीं, कलयति=प्रतापती है ।

सन्तुष्ट—यद्यपि वसंत मान के आ जाने पर कौकिल अपने पचन का न मान घन हो बहुत कर देती है तो भी उसे नुन कर सुन्दर वन्द्यूर के वृक्ष पर बैठती कपोती पीतला घन नहीं कर देती । इसी प्रकार मैं प्रकृत ओठ कवियों का काव्यों के होते हुए भी मैं काव्य रचना कर रहा हूँ ।

महस किरत सुभाउ । उगि आदित्य नमय अथर ॥

अथय उगा न मारो । भोटलये नैव मलकति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—महस=महस, सुभाउ=स्वभाव, उगि=उगार, आदित्य=सूर्य, अथर=अथरे को, भोटलये=ज्योति कीट, मलकति=मलकता है ।

सन्तुष्ट—जिस प्रकार मैं मान्य दिग्गो के स्वभाव वाले सूर्य के दिव्य प्रीति सागर में उदय होकर स्वभाव को ही कर दिए जाते पर भी छोटे के शरीर याता ज्योति पीट घसीटु जुगल घनो ज्योति प्रतापित रचना करती कर देता इसी प्रकार मैं प्रकृत सुन्दर काव्यों पर कवियों के होते हुए भी मैं काव्य-रचना कर रहा हूँ ।

कचनल महि कम्पूरी । रानी गेहन नयन भगार ॥

या गति धनि मुमारी । कि नयने नैव मङ्गलि ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—कचनल महि कम्पूरी कचनो महि कचनल, या=यात्री, गति=गति, मुमारी=मुमारी, कि नयने नैव मङ्गलि=कि नयने नैव मङ्गलि ।

सन्तुष्ट—जिस प्रकार मैं मान्य-भगार के दिव्य रानी के प्रेम कम्पूरी कचनल महि पर भी मुमारी को कचनल को दिए कर देती पर मङ्गल

नहीं कर देती उसी प्रकार से अनेको सुन्दर कवियो एव काव्यों के होते हुए भी मैं काव्य रचना कर रहा हूँ ।

ईस सीस असमान । सुरसुरी सलिल तिष्ठ नित्यानं ॥

पुनि गलती पूजारा । गड्ढा नैव ढालति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—सुरसुरी=गंगा, तिष्ठ=रहती है, नित्यानं=प्रतिदिन; गड्ढा=लोटा; नैव=नहीं, ढालति=चलाता है ।

अनुवाद—यद्यपि ईश के शीश पर सुरसुरी (गंगा) का अद्वितीय जल मदा विलयमान रहता है किन्तु फिर भी पुजारी लोग शिव के गले पर अपने लोटे के जल को चढ़ाना बन्द नहीं कर देते उसी प्रकार से अनेको कवियो एव काव्य-ग्रन्थो के होते हुए भी मैं काव्य सृजन कर रहा हूँ ।

कहां लगि लघुता बरनवों । कविन दास कवि चंद ॥

उन कहि ते जो उच्चरी । सोच कहों करि छंद ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—लगि=तक, बरनवों=वर्णन करूँ, उच्चरी=बाकी बच गया है ।

अनुवाद—कवि चंद अपनी दीनता प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं अपनी लघुता का वर्णन कहाँ तक करूँ । मैं तो केवल पूर्ववर्ती कवियो का दाम हूँ और पूर्ववर्ती कवियो में से जो कुछ बच गया है उसी का वर्णन मैंने किया है ।

सरस काव्य रचना रचौ । खल जन मुनि न हसंत ॥

जैसे मिधुर देखि मग । स्वान सुभाव भुसंत ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—रचना रचौ=प्रणयन कर रहा हूँ, गल=दुष्ट, मिधुर=हायी, भुसंत=भौंकने हैं ।

अनुवाद—कवि का कथन है कि मैंने सुन्दर एव मरन काव्य की रचना की है जिसे सुनकर अथवा पढ़कर दुष्ट व्यक्तियों को भेग उपद्राम नहीं करना चाहिए किन्तु जैसे हाथ को मार्ग पर जाते हुए देगधर वृत्ते स्थान्वनायानुसार भौंकने लगते हैं उसी प्रकार मे यदि दुष्ट जन मेरा उपद्राम करें तो मेरा कोई दोष नहीं है ।

नो पनि मुजन निमित्त गुन । रचिये नन मन फूल ॥

जुका भय जिय जानिके । क्यां डारिये दुखल ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—नो = नव, पनि = फिर ।

प्रनुषाद—तब फिर मज्जनो के फलदाया प्रच्छे प्रयोग के लिए कवि तन-
मन में प्रफुल्लित होकर रचना करता है और युक्तियों के भय से वाक्य-मूलन
उन्ही प्रकार बन्द नहीं कर देता जिस प्रकार हँसों के डर से कोई बन्द नहीं
कर देता ।

मुक्ताहार विहार मार मुबुबा, अरुधा बुबा नौपिनी ॥

मेत चौर नरीर नीर गहिरा, गारी गिरा नौगनी ॥

घोना पानि मुयानि जानि अधिजा, हुंनार रना प्राग्निनी ॥

लवोना चितुरार भार जघना, विघ्ना घना नागिनी ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—मुक्ताहार = मोतियों का हार, विहार = मोनाचलान, मार =
ताप रूप, मुबुबा = झट्टी बुल, अरुधा = मूंग; बुबा = बुद्धिमान, मेत =
मेत, मपेद; नीर-गहिरा = गहरा नीर अर्थात् वातर मूत्र, पानि = हाथ,
अधिजा = मधुमै देवी, चितुरार = केशलान, नागिनी = नाग का पेटे वाली है ।

प्रनुषाद—प्रनुषाद पद में कवि ने मरम्भती के रूप का वर्णन किया है और
प्रत्यक्ष रूप में विभिन्न वाक्यों को इस करने का प्रयोग किया है । यदि धारणा
है—जि जिसके मरम्भती पर नागिनी का घना लुपता का मोनाचलान गता है,
जो बुल को वातर है, मूंगों और पच्छिमा दोनों को मार करने वाली है,
मपेद जिसका ताप है और जिसका नीर अर्थात् वातर मूत्र के मूल है ।
ऐसी वा मरम्भती जो पानि मोतिनी के मरम्भती पर लगी है मरम्भती मरम्भती ।
मपेद हाथ में मोती है, मूंग में मरम्भती मरम्भती है, मरम्भती मरम्भती है मरम्भती
मरम्भती पर विचारमान करने वाली है । मरम्भती मरम्भती मरम्भती मरम्भती
का ताप करने वाली है ।

मरम्भती मरम्भती मरम्भती मरम्भती मरम्भती ॥

मुक्ताहार विहार मार मुबुबा, अरुधा बुबा नौपिनी ॥

अग्नेजा श्रुति कुंडल करि, करस्तुदीर उदारयं ॥

सोय पातु गनेश सेस सफल, पृथ्वाज काव्य कृत ॥ २० ॥

शब्दार्थ—अग्नेजा = मिर मे उत्पन्न हैं अर्थात् जो मस्तक काटने पर उप्पन्न हुए हैं अर्थात् गणेश जी, अलिभूराच्छादिता = भ्रमरो के समूह मे आवृत्त, पया = पैरो में, भामिता = शोभायमान है, अग्नेजा श्रुति = कान के अग्र भाग में, कोय = मो वही, पृथ्वाज = पृथ्वीराज विषयक ।

अनुवाद—प्रस्तुत पद मे गणेश जी की स्तुति की गई है और फिर कवि ने उनसे पृथ्वीराज विषयक काव्य की निर्विघ्न नमाप्ति मांगी है । कवि का कथन है कि जो मस्तक काटने पर पैदा हुए हैं, जिनके मस्तक मे गजों के समान रस धारा प्रवाहित होती रहती है, जो भ्रमरो के समूह से आवृत्त हैं, जिनके वक्षस्थल पर गुंजाग्रो का हार शोभायमान है, जो गुणियों मे गुणी हैं, जिनके पैरो में भुंक्का आभूषण शोभायमान है, जिन्होंने कान के अग्र भाग की शोभा के लिए कुण्डल धारण कर रक्ता है, हाथी की नुंड के समान जिनका मस्तक है और तोड़ उठी हुई है ऐसे गणेश जी हमारी रक्षा करें तथा पृथ्वीराज विषयक काव्य प्रणयन मे लीन मेरी जितनी भी इच्छाएँ हैं उन सबको सफल करें ।

आसा महीव कव्वी । नव नव किक्तीय सग्रहं ग्रंथ ॥

सागर सरिस तरंगी । वोहथ्ययं उक्तिय चलयं ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—आसा = आशा, महीव = बहूत तरंगी, किक्तीय = कीर्ति ।

अनुवाद—कवि चंद का कथन है कि मेरी इच्छा एक ऐसे बृहत् ग्रंथ की रचना करने की है जिनमें नये नये राजाग्रो के चरित्र का वर्णन हो । जिनमे सागर के समान निरन्तर भावस्फी उर्मियाँ उठती रहे और सुन्दर युक्तियों एवं उक्तियों स्फी जलमान जिनमें विचरण करें ।

काव्य समुद्र कवि चंद्र कुन । मुगति समप्पन ग्यान ।

राजनीति बोद्धि सुफल । पार उत्तरन यान ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—मुगति = मुक्ति ।

अनुवाद—कवि गद का अर्थ है कि मैंने अपने काव्य-ममूत्र का प्रणयन किया है जिसे गड़कर मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं इनके पढ़ने से राजनीति विषयक ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाएगी।

६४ प्रबंध कवित्त जति । नाटक गाह दुहम्य ॥

लहृ गुर मंडित त्वडियहि । पिंगल ग्रमर भरव्य ॥ २३ ॥

शब्दायं—दुःख्य=दोष, लघु=लघु, विगल=विगल हा छर मान्त्र,
मगर. मगराण, भरख्य=भरत मुनि विचित नाट्यगान ।

धनुशब्द—जबि का कथन है कि मने उस काल में छत्र, प्रवध, गामा, मादन तथा दांते धादि का प्रयोग किया है। यति, यति नो और है। जबि मने प्रग की विशेषता बताने हुए कहा है कि मने इस काल के प्रत्यय में विभक्त छत्र गामा, प्रमरणोप तथा नग्न मुनि कृत् नादर गामा का पुत्रीना रूप प्रस्तुत कर दिया है।

अति दुख्यौ न उधार । भलिल जिमि सिण्णि निवालद ॥

वरन वरन सोभत । द्वार चतुर्ग विमालह ॥

विमल अमल धानी विमल । धानी धर धनन ॥

अग्निं ययन विनोद । मोद भोक्तुं गत हरन्त ॥

नृत नयुत जुक्ति विचार विधि । वयन नृद उदरी न कट ॥

षटि षटि गति कांक्षि पट्ट । तौ च न दोष रिज्जो न वा ॥ २४ ॥

[illegible]

समुदाय—यदि का समय है कि हम जानें का मत है कि मैं जाना-बोला
 और वे मनुष्य हैं जो न तो बलिष्ठ हुए पदों पर हूँ और जो न तो बलिष्ठ
 मान्य समीप मान्य हूँ । हमका प्रयोग नहीं होय हम सब दुखों में पड़ें

का विशाल हार है। इस काव्य में उस वाणी का आश्रय ग्रहण किया गया है जो अपनी पवित्रता, निर्मलता आदि गुणों के कारण महान् है। कवि पुनः कहता है कि इसकी उक्तियाँ, सुन्दर वचन आदि श्रोताओं के मन को प्रमुदित करने वाली हैं। अतः कवि की प्रार्थना है कि युक्ति रहित और युक्ति सहित का विचार रखते हुए इसमें प्रवेश करिए और वचन (बोलचाल) भाषा में वर्णित छन्दों को ही पढ़िए। उससे दूर पड़े हुए छन्दों को न पढ़ें तथा मात्रादि में घटा बढ़ी करके चद को दूषित न करें।

उक्ति धर्म विशालस्य । राजनीति नवं रसं ॥

षट् भाषा पुराण च । कुरान कथितं मया ॥ २५ ॥

अनुवाद—कवि चद का कथन कि उसने अपने महाकाव्य में धर्म सम्बन्धी तथ्यों का विशाल एवं माझोपांग विवेचन किया गया है, सुन्दर-सुन्दर उक्तियों का प्रतिपादन किया गया है, तथा राजनीति शास्त्र का विशद वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में समस्त रसों का मनोरम प्रतिपादन किया गया है। इसमें छ-भाषाओं सम्स्कृत, पालि आदि में लिपिबद्ध किए गए ग्रंथों की सार-वस्तु मगूहीत की गई है तथा विदेशियों के ग्रन्थ कुरान आदि के भी मनुचित मिद्धान्तों का समावेश इनमें हो गया है।

चरन नीम अन्धिर सुरंग । लहु गुरु विधि मंडिय ॥

सुर विकास जारी सुमुष्य । उक्ति रस गोरव निछंडिय ॥

जुगति छोह विस्तरिय । सीटियन घाट सु बहिय ॥

महि मडन मेधान । याहि मडन जस सहिय ॥

घन तर्क उत्तर्क वितर्क जति । चित्र रंग करि अनुसरिय ॥

विश्वकर्म कवि निर्मड्य । रसिय सरस उशरिय ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—चरन = चरण, नीम = नीय, अन्धिर = अंधार, सुरंग = सुन्दर रंगों के, जुगति = गुरानि, विस्तरिय = विस्तार करने वाली, महि = पृष्ठी; घन = अधिक, घटन मारे।

अनुवाद—कवि का कथन है कि विश्वकर्मा के समान मैंने भी काव्य के

नररम एवं नररम रम मे पूर्णं वाक्य-नगोवर का निर्माण विज्ञ है । जिस प्रकार मे नरगोवर निर्माण मे सर्वप्रथम नीव की आवश्यकता होती है उसी प्रकार से कविता के चरण ही नीव हैं । इसके सुन्दर-सुन्दर वर्ण ही सुन्दर रंग-विरंगे पत्थरों के समान हैं । इसी प्रकार मे इन काव्य में लघु और शुद्ध का समुचित विधान है, महीन धातु के स्वरों को ठीक ठीक नियोजित किया गया है, गौरवमयी तथा उदात्त भावों को पूर्ण करने वाली ऐसी रत्नमयी उक्तियों का महत्त्व दिया गया है जो युक्तियों में स्नेह का विस्तार करने वाली हैं । कवि का कथन है कि ये सब उक्तियों मेरे काव्य में इस प्रकार नियोजित हैं जिस प्रकार मे सरोवर मे मीठियों का प्रतिक विधान होता है । कवि का पुन कथन है कि मेरा यह काव्य समस्त पृथ्वी को अपनी मेघा में मज्जित करने वाला है । जाना ही नहीं इसके स्नेह वर्णों का क्या ही समस्त नगर में फैला हुआ है । मेरे इस काव्य में ये तर्क-वितर्क हैं तथा तर्कान्तीत बातें भी दी गई हैं । जिस प्रकार मे नगोवर में अनेक प्रकार की छोटी बड़ी लहरियाँ उठती हैं उसी प्रकार मे मेरे इस काव्य में नाना प्रकार के भावों का अनुगमन किया है ।

तर्क वितर्क उनर्क सु जत्तिय । राज नभा सुभ भानन भत्तिय ॥

कवि आदर सादर बुध चाहो । पढ़ि करि गुन रामो निर्वाहो ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—राजनभा = राजाओं की नभा, गुन = गुण, भानन = करने योग्य ।

अनुवाद—इस पर मे कवि कथने इस के विषय-प्रतिपादन को दिव्यता करते हुए बताया है कि मेरा यह कव्य अनेक प्रकार की तर्क-वितर्क और तर्कान्तीत बातों मे उदा हुआ है । मेरे इनमें उन सभी उक्तियों का महत्त्व दिया है जो राजमन्त्र में रहने योग्य हैं तथा जितना विज्ञान प्राप्त करने में । अतः सभी पढ़कर और सुन कर धर्मात्मानों समस्त समस्त पर इसी प्रकार समस्त ।

धर्म अधर्मन बुद्धि विचारो । नरन नारि निय नेह निहारो ॥

प्रेम कल्याण कन केलि प्रकाशो । अरुण करी गुन रामो भानो ॥ २८ ॥

अनुवाद—कवि का कथन है कि मेरे इस कव्य का महत्त्व करने मे परम, धर्म और अधर्म का ज्ञान हो जाना । अरुण का कर्म भी जानने

जाएगा तथा समस्त कामशास्त्र और उसकी केलियाँ (क्रीड़ाएँ) भी आपके मन में प्रकाशित हो जाएंगी ।

पारासर जो पुत्त विसासह । सतवती ग्रम्भं गुर भासह ॥

प्रव्य अठार सवा लप लप्पै । तौ भारथ गुर तत्त विसप्पै ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—पुत्त = पुत्र, विसासह = व्यास, सतवती = सत्यवती, ग्रम्भ = गर्भ, प्रव्य = पर्व, अठार = अठारह, तत्त = तत्त्व, विसप्पै = विशेष ।

अनुवाद—सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न तथा पारासर मुनि के पुत्र व्यास ने महाभारत में जितनी विद्याओं को कहा है अर्थात् लिपिवद्ध किया है वे सभी मेरे इस काव्य के अनुशीलन से आपको प्राप्त हो जाएंगी ।

रासो वर बुद्धि । सुद्धि सो सव्व प्रमानिय ॥

राजनीति पाड्यै । ग्यान पाड्यै सु जानिय ॥

उकति जुगति पाड्यै । अरथ घटि बढि उन मानिय ॥

या समान गुन आप । देव नर नाग बखानिय ॥

भविञ्जत भूत व्रतह गुनित । गुन त्रिकाल सरसइय ॥

जो पढ्य तत्त रासो सुगुर । कुमति मति नहिं ढरमइय ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—भविञ्जत = भविष्यत, व्रतह = वर्तमान, पढ्य = पढ़ेगा ।

अनुवाद—कवि अपनी विशेषताओं का उद्घाटन करते हुए कहता है कि मेरे इस रासो ग्रंथ का तत्त्व बड़ा गौरवपूर्ण है और यदि तुम इसे किसी अच्छे गुरु से बिना घट-बढ़ के अर्थात् जैसा है वैसा ही पढ़ोगे तो तुम्हारी बुद्धि शुद्ध हो जाएगी, तमाम निदियों का ज्ञान हो जाएगा, राजनीति का ज्ञान हो जाएगा, उक्तियों तथा युक्तियों की प्राप्ति हो जाएगी ।

कवि पुन अपनी प्रशंसा करते हुए कहता है कि मेरे इस ग्रन्थ की प्रशंसा देवताओं, नागों, मनुष्यों अर्थात् सबने की है । इसमें वर्तमान, भूत, भविष्यत की सब बातें हैं । मत्, रज, तम आदि सब गुणों से यह सन्निभ है और यदि आप किसी अच्छे गुरु से इसे पढ़ेंगे तो आपकी परिष्कृत श्रवण रह जाएगी, अपरिष्कृत नष्ट हो जाएगी ।

कुम्भति मति दूरनन तिहिं । विवि विना न श्रव्यान ॥

निहिं रामो जु पवित्र गुण । नरमो ब्रह्म रमान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—श्रवण—सुनें ।

अनुवाद—कवि का काम है कि वह जो मने उस प्रथम का निर्माण सम्पूर्ण
 मन्त्रों में किया है किन्तु जो व्यक्ति होने लगे ठीक नहीं मुझे ज्ञानी बुद्धि
 मने के बाद भी ठीक नहीं होगी ।

सत्त गन्ध नप निप मरम । मरुल आदि मुनि दिप्य ॥

घट पट मन काऊ पटो । मोहि दूजन न यमिअय ॥ ३२ ॥

गम्दायं—गत=गण, मान, मत्ता - गन्ध रनिष्ठ - विनिष्ट ।

अनुवाद—यदि नद का जल है जिसे हम जाना में लाते हैं वह न अस्विकृत है तब यदि मुक्ति वांछनी है तो जिनके जल दान करने वाले हैं वे भी प्राप्त कर लेंगे यदि नहीं तो यदि नहीं पता चला है तो हमें पता चलेगा यदि हम जाना में लाते हैं तो यदि न जाना में लाते हैं तो यदि नहीं पता चला है तो हमें पता चलेगा ।

पुष्पं दक्षिणं मङ्गला । उषारैः वनविद्यं पञ्चलया ॥

मन्त्रं मन्त्रं प्रमानं । चतुर श्री दारयं ज्ञेयं ॥ ३३ ॥

सारांश—उत्तर = उत्तर में, यन्त्रि प्रां के पञ्चमा -- सप्तमक;
 जेस = जिस प्रकार में ।

समुपाय—अमुक्त पत्र में यदि नन्द का प्रयत्न था कि वह लाली से परिचित हो सके तो वह भी असफल रहा है, क्योंकि लाली ने, अमुक्त पत्र के सम्बन्ध में कोई भी प्रतिक्रिया नहीं दी।

[illegible]

अनगपाल पुत्री उभय । इक दीनी विजपाल ॥

इक दीनी सोमेस को । बीज ववन कलि काल ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—अनगपाल = अनगपाल, उभय = दो, विजपाल = विजयपाल (कन्नोज का राजा), सोमेस = सोमेश्वर, ववन = वपन, बोना ।

अनुवाद—राजा अनगपाल के दो पुत्रियाँ थीं उनमें से एक कन्नोजेश्वर विजयपाल को और दूसरी सोमेश्वर को उस कलियुग में मृत्यु का बीज बोने के लिए दी ।

एक नाम सुर मुन्दरी । अनि वर कमला नाम ॥

दरसन सुर नर दुलही । मनो सु कलिका काम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—अनि = अन्य, दुलही = दुलभ, कलिका = कलिकाएँ, काम = कामदेव ।

अनुवाद—उनमें से एक का नाम सुर मुन्दरी और दूसरी का नाम कमला था । उनके दर्शन देवताओं और मनुष्यों को दुर्लभ थे । तब सौंदर्य में वे मानों कामदेव की कलिकाएँ थीं ।

ज दिन व्याहि सोमेस । त दिन अमरन मन उदित ॥

त दिन वीर वेताल । काल, कलहागम कुदित ॥

त दिन अरुणि उमड़ीय । पुत्र इहि भार उतारै ॥

छत्र तेज छित छज्जि । देव दानव पुतारे ॥

मानिक राह अगनेन घर । पानि ग्रहन ज दिन थपे ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—ज = जिस, त = उस, अमरन = देवताओं के, उदित = उम-गित, काल = मृत्यु, कलहागम = कलह का आगम हुआ, अगनेस = अनगपाल, दिन = दिन, थपे = हुआ ।

अनुवाद—जिन दिन शीतल मानिक राय और अनगपाल के घरों में सम्मन्य हुआ उसी दिन से देवताओं के मन प्रमुदित रहने लगे । मृत्यु और कलह का आगमन तथा उदय हुआ । पृथ्वी को आशा हो आई कि सोमेश्वर से उत्पन्न पुत्र मेरा भार उतारेगा और यह पृथ्वी पर प्रताप-पुनः छत्र धारण

करके देव श्रीर शनय स्वी वीरों का उद्धार करेगा । उसी दिन मे वीरों के
बोहाम्त्र भी मजाए जाने लगे श्रीर वावरो के हृदय भ्रम मे कयापमान होने
लगे ।

कितिक दिवस अंतरह । रहिय आधान रानि डर ॥
दिन दिन कला बढत । मेघ ज्यो बढन भर धुर ॥
चन्द्रकला मित पाय । जेम घाढ़त दिन दिन ॥
मुग्धा जीवन चढ़त । मिलत भरतार पिनं पिन ॥
घरिन अधान सुभ गातनह । जेम जलधि पुनिम बढति ॥
हुलनत हीय जे प्रीय प्रिय । जिम मुजोति जनिता बढदि ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—कितिक=कितने, आधान=गर्भ, बढ=भाद्रपद, मित
पाय=शुक्ल पक्ष, पिनपिन=क्षण-क्षण, पुनिम=पूर्णिमा, प्रिय=
प्रियदा ।

अनुवाद—जितने ही दिनों बाद गौरी कमला के गर्भ रहा सोर दिनोंदिन
जग मुन्दरी के मुग पर प्रभा बढने लगी । माग माघ गर्भ इन प्रकार बढने
लगा जैसे भाद्रपद का मेघ, शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला, पति के निम्न प
मुग्धा स्त्री का जीवन सोर पूर्णिमा के दिन समुद्र बढता है । उन प्रकृति के
मुग पर जैसे जैसे ज्योति बढने लगी वैसे ही उसकी प्रिय नगिदा हृदय में
प्रगल्भ करने लगी ।

सोमेसर तोअर । घरनि । अनगपाल पुत्रीय ॥

निन तुपिब्ध गर्भ धरिय । शनय हुल छरीय ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—सोसर=सोसर, पुनि वन तुपिब्ध=पुत्रीगत ।

अनुवाद—सोमेसर की गौरी, सोसर पक्ष के माता अनगपाल की कला
के बढने गर्भ में शानत हुन की उचित करने लगे दूसरे माता की पारल
निरा ।

प्रथम पुत्र सोमेस । गधपुन दुहा गरिठय ॥

भई गति सन्धवन । पुत्र संगन पुन गरिठय ॥

बहु जुद्ध रुद्ध कलि जुग वर । अत्त सत्त दैतन भिरन ॥

कवि चंद दिली यह कारने । इह अपुव्व अवतार लिन ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—पुह्वै = पृथ्वीपति, जोति = ज्योतिषी, लिद्धि = दिखाया, चिहु = चारो ओर ।

अनुवाद—पृथ्वीपति अनंगपाल ने पृथ्वीराज के जन्म होने पर जगजोति व्यास को बुलाया और जन्म लग्न लिखवाया, उन नवजात के नामकरण को सुनकर पृथ्वी कपायमान होने लगी । वह पृथ्वीराज, कामदेव और शक्ति रूप में प्रकट हुआ । कस रूपी शत्रुओं को नष्ट करने के लिए वह वाराह और तूफ़ान में अवतरित होख पड़ा । वह युद्धों में बहुतों को रौंदने वाला था वैसे ही इन कलियुग में दैत्यों से मिटने योग्य उसके श्रेष्ठ सामंत थे । कवि चन्द कहता है कि दिल्ली के भू-भाग को स्थिर रखने के लिए उनसे अपूर्व अवतार लिया ।

पुत्री पुत्र उछाह । दान मानह धन दिद्धिय ॥

धाम वाम गावत धमारि । मनहु अहि मनि लिद्धिय ॥

कनवज जैचन्द मात । भयो सभरि वहनी सुत ॥

तिन पवत दुज पठिय । धार जर चीर थपिय धुत ॥

पहिराड परीघह दान दुज । किय समाय सव्वन विवरि ॥

वस दिवस रण्यि अप्पन अवर । अति उछाह आनन्द करि ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—दिद्धिय = दिया, धमारि = मंगलगान, मनहु = मानो, अहि = सर्प, भनि = भण्ड, लिद्धिय = प्राप्त की हो, दुज = द्विज, पठिय = भेजा, धार = घाल, चीर = वस्त्र ।

अनुवाद—दोहिश के जन्म होने के उत्सव में अनंगपाल ने बहुत ना दान और सम्मान किया । प्रत्येक घर में मंगलगान होने लगे और प्रत्येक कोई ऐसे दोस पटने लगे मानो सर्प ने भण्ड प्राप्त की हो । जयचन्द की माता ने जब यह सुना कि उसकी बहिन के लडका हुआ है तो उसने धानियों में जर्गीन वस्त्रादि सजा कर द्विज को दिल्ली भेजा । उसने आकर राज्याधिकारी, गरीबों और द्विजों को वह पहरावी पहनाई और व्योरेवार नव को वह समर्पित की ।

राजा अनंगपाल ने भी विशेष उत्सव किया और अपने तथा पराए जो भी उत्सव में सम्मिलित हुए थे उनको दस दिन तक मेहमान रखता ।

मुनि सोमेस बधाइ दिया । है गै चीर गुराव ॥

अति उछाह आनंद भरि । नृप मुष चढिढ्य आव ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—है = हय, घोड़ा, गै = गज, हाथी, नृप = नृप, आव = आभा ।

अनुवाद—इस मांगलिक सूचना को सुनकर सोमेश्वर ने भी विशेष कीमती हाथी, घोड़े, वस्त्रादि बधाई में दिए और प्रसन्न होकर इस उपलक्ष में विशेष उत्सव किया । इस अवसर पर राजा के मुख पर विशेष कांति दीख पड़ी ।

तब बोलाय सोमेस वर । लौहानी अरु चन्द्र ॥

लै आवहुं अजमेर धर । पहुँतै घरह सु इंद ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—लौहानी अरु चन्द्र = लौहानी तथा चन्द्र नामक दो सामंतों के नाम ।

अनुवाद—फिर उस श्रेष्ठ राजा सोमेश्वर ने लौहानी और चन्द्र नामक सामंतों को बुला कर कहा कि हम सब चल कर रानी और कुमार को दिल्ली से अजमेर ले आवें । फिर कहते हैं कि वे श्रेष्ठ राजा अनंगपाल के घर दिल्ली में पहुँच गए ।

करि आनौ उछाह किय । चलिय राज अजमेर ॥

सहस वाजि है सुभर वर । सत्त सपी मनि मेर ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—वाजि = घोड़े, सुभर = सुभट, घोड़ा, वर = श्रेष्ठ, सत्त = सत, सौ, सपी = मत्सी, मेर = मुमेर पर्वत ।

अनुवाद—दिल्ली में विशेष उत्सव मनाया गया और गीता लेकर सोमेश्वर अजमेर को रवाना हुआ । साथ में एक सहस्र घोड़े और श्रेष्ठ योद्धा थे तथा सौ सगियाँ मणि और मुमेर के समान देदीप्यमान थी ।

घरष बधै थिय वाल । पिथ्य बद्धै इक भासह ॥

घरी दीह पल पप्प । मास लप्पय त्रप तामह ॥

मनिगान कंठलाकठ । मद्धि केहरि नप मोहत ॥

घूघरवारे चिहुर । रुचिर बानी मन मोहत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—वरप = वर्ष में, वधै = बढ़ती है, विय—आयु, बाल = बालक;
पिथ्य = पृथ्वीराज, इक = एक, पण्प = पक्ष, तासह = उसकी, मनिगन =
मणियों का समूह, कठला = माला, मद्धि = मध्य, नप = नख, नाखून,
चिहुर = बाल ।

अनुवाद—अन्य बालक जितने वर्षों में बढ़ते हैं उतना ही पृथ्वीराज एक
माह में बढ़ने लगा । जब वह एक वर्ष, एक माह, एक पक्ष, एक दिन, एक घड़ी
और एक पल का हो गया तब शुभ मुहूर्त के साथ बाहर लाया गया । उसके
गले में मणियों की माला पड़ी हुई थी जिसमें सिंह के नाखून पिरोए गए थे ।
उसके घुघराले केश थे और मधुर सुन्दर वाणी से वह मन को मोहित कर
लेता था ।

केसर सु मडि सुभ भाल छवि । दसन जोति हीरा हरत ॥

नह तलप इक्क थहपिन रहत । हुलसि उठि उठि गिरत ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मडि = मण्डित, चचित, जोति = ज्योति, काति, हुलसि =
उल्लास ।

अनुवाद—उसका उन्नत मस्तक केशर से चचित होने के कारण शोभा
पा रहा था । दत्त पक्ति की आभा हीरो की काति को हरण करने वाली थी ।
वह एक क्षण भी एक स्थल पर नहीं रहता था । उल्लास के कारण बार-बार
उठता गिरता था ।

रज रंजित अजित नयन । घूठन डोलत भूमि ॥

लेत धलैया मात लपि । भरि कपोल मुप चूमि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—घूठन = घुटने, लपि = देखकर, मुप = मुख ।

अनुवाद—सबको प्रसन्न रखने वाला शिशु (पृथ्वीराज) जिनके नेत्रों में
काजल लगा हुआ था घुटनों के बल चलने लगा । ऐसी बाल लीला को देख
कर उसकी माता कपोल और मुख को चूम चूम कर बर्नैया लेने लगी ।

अंगुरिन लगि रगि चलत लाल । सर मद्धि उठतगज हस वाल ॥
मिलि वाल जाल कवि रही केलि । वढ़ि रही दूंद जनु बीज जेल ॥५०॥

शब्दार्थ—सर=सरोवर, दूंद=द्वंद, लगि=लगा कर ।

अनुवाद—वह बालक अंगुलियों को पृथ्वी पर लगा कर (घिसता हुआ) चल रहा था । तब ऐसा प्रतीत होता था मानो तालाब के बीच में हस या हाथी का बच्चा चलता हो । कवि का कथन है कि वह बाल-समूह में अनेकानेक झीझाएँ कर रहा है और जिस प्रकार बेल का बीज पृथ्वी को फोड़ कर बढ़ता है ऐसे ही वह बालक पृथ्वीराज शनै शनै बढ़ रहा है ।

जनु रमत कमल ऋत कमल अगग । तप तेज वढ़ि भुप पिच्छ नग्न ॥
सब देव तेज देपंत अग । उछार अंग अद्भुत प्रसंग ॥५१॥

शब्दार्थ—देपंत=देखते हैं, उछार=उछालता है ।

अनुवाद—जैसे वसंत ऋतु में विकसित कमलों के अग्र भाग पर शोभा छा जाती है वैसे ही उसके खिले हुए मुग मडल पर तेज बढ़ने लगा । समस्त देवतागण उसके अङ्गों के तेज को देख रहे हैं, उत्साह के कारण अद्भुत ढंग से वह अपने अंगों को उछालता है ।

सँग वाल बैठि भोजन करंत । परिवार वस्तु लै हठ धरंत ।
आदर अदच्च सय्यीन देत । वगसीस करन पिय परम हेत ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—सय्यीन=मायियों को, वगसीस=वस्त्राश ।

अनुवाद—वह अपनी आयु के बालकों के साथ बैठ कर भोजन करता है तथा घर में पसंद आने वाली वस्तु को लेने के लिए हठ करता है । वह मित्रों से विनय पूर्वक पेश आता है । वह अपने मायियों से आदर सहित बात करता है तथा भलाई चाहने वाले अर्थात् सेवकों को वस्त्राश देता है ।

है हृथ्य चढत चढुत आनंद । मन मौज चोज कवि पढ़त छंद ॥
जिन हृदय कमल विद्याह हेत । छल छेद भेद तिन बुद्धि लेत ॥५३॥

शब्दार्थ—हृथ्य=हाथी, तिन=उनका ।

अनुवाद—वह हाथी पर चढ़ता है जिससे उसकी प्रसन्नता बढ़ती है और मन के प्रमुदित होने पर वह कवियों के समान चमत्कारिक उक्तियाँ छंद आदि

पढता है । वह अपने हृदय-कमल अर्थात् मन में साम, मेद, दण्ड आदि समस्त बातों को अच्छी तरह समझ लेता है ।

पाडक्क संग कायक्क केलि । धरि धूप ह्थ्य वाहत भेलि ॥

गहि वग्ग ह्थ्य फेरत तुरंत । नट नृत्य निपुन धावत कुरंग ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—पाडक्क = पायक, सेवक, कायक्क = कायिक, केलि = श्रीडाएँ, कुरंग = मृग ।

अनुवाद—वह मेवको के सग शारीरिक श्रीडाएँ करता है, हाथ से तलवार पकड़ कर घुमाता है और बार सहन कर लेता है, हाथ में लगाम ग्रहण करके घोड़ों को चलाता फिरता है । अभिनय, नृत्यादि कलाओं में चतुर है तथा चाल में हरिण के समान दौड़ता है ।

जल केलि करत मिलि सजन संग । अल्लोल कलभ जनु सरित रंग ॥
पकवांन पांन सूर्गंध पूर । मादक सुमोद सुप सुपन नूर ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—कलभ = हाथी का वच्चा ।

अनुवाद—वह सयियों के साथ मिलकर उसी प्रकार जल-श्रीडाएँ करता रहता है जिस प्रकार से हाथी का वच्चा जल में किल्लोल किया करता है । वह ऐसे स्वादिष्ट, सुन्दर और मुगधित पदार्थों का आस्वादन करता है जो कि मस्त कर देने वाले, अत्यधिक प्रमुदित करने वाले, आनन्द एव सुन्दरता के मूल हैं ।

पेलत अपेट संग श्वान डोर । वग्गु वधत पर गोस छोर ॥
सुप धरिय पहर दिन पप्प मास । सोमेस सूर चित वद्धत आस ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ—पेलत = खेलत, अपेट = आखेट ।

अनुवाद—वह शृङ्खला में कुक्कुर को बाध कर शिकार खेलता है तथा बागडोर को घनुष कोटि पर (कमान के लिए) बाध लेता है । प्रत्येक घड़ी, पहर, दिन, पक्ष, मास उसे पोषित (बढ़ते हुए) देखकर राजा नीमेश्वर के मन में आयाएँ बढ रही हैं ।

जिम राम कृष्ण सुख नद् गेह । संभरिय राय तिम दसा देह ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—जिम = जिम प्रकार से, राय = राजा; दसा = दया ।

अनुवाद—(पृथ्वीराज को बढते हुए देखकर) अजमेर के राजा को वैसा ही आनन्द होता है जैसे बलराम और कृष्ण को बढते हुए देखकर नद को होता था ।

कै दसरथ ग्रह राम । कै धाम वसुदेव कृष्ण वर ॥
 कै कलि कस्यप कूप । जानि उपज्यौ किरनकर ॥
 कृष्ण प्रेह कै काम । कै काम अगज जनु अनुरध ॥
 कै नल कस्यप अवतार । किधौ कौमार इश्व रुध ॥
 लपिन वतिस बहुतरि कला । बाल घेस पूरन सगुन ॥
 क्रीडत गिलोल जय लाल कर । तब मार जान चाँपक सुमन ॥५८॥

शब्दार्थ—ग्रहे = गृहे, लपिन = लक्षण ।

अनुवाद—दशरथ के राम, वसुदेव के कृष्ण, कस्यप के सूर्य, कृष्ण के काम, काम के अनिरुद्ध अथवा साक्षात् नल कस्यप स्वरूप या शिव के कार्तिक स्वामी जैसा ही सोमेश्वर के यहाँ पृथ्वीराज ने जन्म लिया जो वत्तीस लक्षणों और बहत्तर कलाओं से युक्त था । जब वह हाथ में गिलोल लेकर श्रीडा करता था तो ऐसा दिखाई देता था मानो पुष्प-प्रत्यचा ग्रहण किए हुए साक्षात् कामदेव हो ।

छुटत गिलोला हथ्य तैं । पारत चोट पयल्ल ॥

कमल नयन जनु कामिनी । करत कटाछ छयल्ल ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—हथ्य = हाथ, छयल्ल = छेला ।

अनुवाद—उनके हाथ की गिलोल (ककर) हाथी पर इस प्रकार आघात करती थी मानो कोई परज-नैनि वाला अपने उच्छिन्न छेना (प्रियतम) पर कटाछ कर रही हो ।

कोइक दिन गुर राम पै । पढी सु विद्या अप्प ॥

चवदसु विद्या चतुर वर । लई मीप पट लिप्प ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—कोइक = कुछ, चवदसु = चौदह, नीप = नीयना, पट = पट्टी; लिप्प = लिखना ।

अनुवाद—उसने कुछ दिनों तक गुरु राम पुरोहित से विद्याभ्यन किया और चौदह विद्याओं में दक्ष होकर पट्टी पर सुन्दर लिपि लिखना भी सीख लिया ।

लिपि सिष्य कु अर प्रिथिराज राज । गुरु द्रोण पास सुत धम्म ताज ॥
ॐ नमो सिद्धि प्रथम पढाय । सब भाव भेद अक्षर बताय ॥६१॥

शब्दार्थ—धम्म ताज = धर्म राज, अक्षर = अक्षर ।

अनुवाद—राजकुमार पृथ्वीराज लिखना सीख कर बड़े गुरु के पास गए जो धर्मराज थे, ठीक उसी प्रकार से जैसे पाण्डव-कौरव गुरु द्रोणाचार्य के पास विद्याभ्यास के लिए गए थे । उन्होंने उसे 'ओम् नमो सिद्धि' का पाठ पढाया और फिर उसने उनसे गभीर ज्ञान सम्बन्धी बातें समझ ली ।

दस पांच दिन अभ्यन कीन । दस च्यारि सार सब सीप लीन ॥
सीपी कला दस अठ्ठ च्यारि । तिन नाम कहत कवि अग्न सारि ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—कीन = किया, दस च्यारि = दस + चार = चौदह, सीप लीन = सीख ली, दस अठ्ठ च्यारि = चौरास्ती, अग्न सारि = अग्रसर, आगे ।

अनुवाद—उसने दस पांच दिवस अर्थात् कुछ दिनों तक अध्ययन किया तथा चतुर्दश कलाओं का समस्त सार सीख लिया । उसने चौरासी अन्य विद्याएँ भी सीखी जिनका वर्णन कवि आगे करेगा ।

गुरु गीत वाद वाजिन्न नृत्य । सोचक सु वाच्य मविचार वृत्य ॥
मनि मत्र जत्र वास्तुक विनोद । नैपथ विलास सुनि तत्त मोद ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—वाद = वाद्य, सु वाच्य = सुन्दर बातें, वास्तुक = वास्तु कला, नैपथ्य = नैपथ्य ।

अनुवाद—उसने गुरु से गीत, वाद्य, वाद-विवाद, नृत्य, सम्यक ढंग से विचार करना, अच्छे वचन, विचार समन्वित बातें, मोनाकारी, मय-जय (ताम्रिकों की मिट्टियाँ) वस्तु कला, नैपथ्य-कार्य में दक्षता, उपहाम की बातें आदि सीख ली ।

साकुन्न कला क्रीडन विसार । चित्रन सु जोग कवि चवत चारु ॥
कुसुमेप कला जुत इन्द्र जाल । सुचि क्रम विहार आहार लाल ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—शाकुन्न = शकुन, सु जोग = सयोग, कुसुमेप = कामदेव,
इन्द्रजाल = जादूगरी ।

अनुवाद—(कवि का कथन है कि) उसने शकुन विद्या, नाना प्रकार के खेल और सयोग से सुन्दर चित्र-विद्या में भी निपुणता प्राप्त कर ली । उसने कामदेव की कला, जादूगरी, अच्छे आहार, व्यवहार का क्रम भी सीख लिया ।

सौभग प्रयोग सूगध वस्त । पुनरोक्त छंद वेदोक्त हस्त ॥
वानिज्ज विनय भापित्त देस । आवद्ध जुद्ध निर्जुद्ध सेस ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—सूगध = सुगन्धित, वस्त = वस्तु, पुनरोक्त = पुनरुक्त आदि
अलंकार, वेदोक्त छंद = वेद आदि में कहे गए छंद, वानिज्ज = वाणिज्य,
भापित्त देस = देश भाषाओं, जुद्ध = युद्ध ।

अनुवाद—सुगन्धित पदार्थों का सुन्दर प्रयोग करना, पुनरुक्त आदि अलंकारों तथा वेदों में कहे गए छंदों को भी उसने गृहण कर लिया । वाणिज्य-कला, नम्र आचरण, देश भाषाओं, लोगों को वश में करना, युद्ध करना, मैत्री स्थापित करना, आदि अवशिष्ट कलाओं को भी उसने सीख लिया ।

वरनंत समय हस्ती तुरंग । नारी पुरुष्य पपी विचंग ॥
भू भू कटाछ मुल्लेप सत्य । वृष छद्म प्रप्पण उत्तर विजत्य ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—हस्ती = हाथी, तुरंग = घोड़ा, पपी = पक्षी, विचंग = विहंग,
भू = भू, कटाछ = कटाई, मुल्लेप = मुलेप ।

अनुवाद—कवि का कथन है कि उसे हाथी, घोड़ा, स्त्री, पुरुष, पक्षी, विहंग आदि को वश में करना आ गया । उसने नीहों से कटाई करना, मत्स्य, सुन्दर लेप, वृष विद्या, छद्म विद्या, प्रश्न करना, उत्तर देना आदि विद्याओं को सीख लिया ।

सुभ साम्म फां गनिक पटन्न । लिपतव्य चित्र कविता चचन्न ॥
व्याकन्न कथा नाटक छंद । अविधान दरस अलंकार घव ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—सास्त्र = शास्त्र, व्याकरण = व्याकरण, नाटक = नाटक, दर्श = दर्शन शास्त्र ।

अनुवाद—कवि का कथन है कि कहाँ तक गणना की जाए, उसे शुभ सास्त्र, लेखन-कला, चित्र-कला, छन्द आदि सभी आ गए । उसे व्याकरण, कथा, नाटक, नाम-शास्त्र, अलंकार-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, छन्द-शास्त्र आदि सभी का ज्ञान हो गया ।

घातक सु कर्म सुभ अर्थ जानि । सुरसरी कला बहुतरि वपान ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—बहुतरि = बहत्तर, वपान = बखान, व्याख्या ।

अनुवाद—कोन सा शुभ अथवा अशुभ कर्म है इसका ज्ञान भी उसको हो गया तथा देवताओं की बहत्तर कलाओं की व्याख्या भी उसने जान ली ।

पाघ विराजत सीस पर । जरकस जोति निहाय ॥

मनों मेर के सिपर पर । रह्यो अहप्पति आय ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—पाघ = पगड़ी, विराजत = शोभायमान, सीस = मस्तक; जरकस = जरी वस्त्र, जोति = ज्योति, चमक, मेर = मेरु पर्वत, सिपर = शिखर, अहप्पति = अहिपति, शेषनाग ।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में कवि पृथ्वीराज के सिर पर बधी हुई पगड़ी की शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है कि चमकदार जरी वस्त्र की दीप्ति को भी फीकी कर देने वाली पगड़ी पृथ्वीराज के सिर पर बधी हुई थी और इस प्रकार प्रतीत होती थी जैसे सुमेरु पर्वत के ऊपर शेषनाग आकर बैठा हो ।

ता पर तुररा सुभत अति । कहत सोम कवि नाथ ॥

मनु सूरज के सीस पर । धिपन धर्यो धनु हाथ ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—सुभत = शोभायमान, धिपन = बृहस्पति ।

अनुवाद—कवि चन्द्र का कथन है कि उसकी सिर की पगड़ी पर तुररा ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्य के शीश पर बृहस्पति ने हाथ ने धनुष भींचा हो ।

अवन विराजत स्वाति सुत । करत न वनै वषान ॥

मनु कमल पत्र अग्रज रहै । ओस उडुगन आन ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—स्वाति=मुत=मोती, अवन=वान ।

अनुवाद—उमके वानो में मोती ऐसी घोभा दे रहे हैं कि वगुन करते नहीं बनता । वे ऐसे प्रनीत होते हैं मानो कमल पत्र के अग्र भाग पर ओस बिंदुओं के न्य में तारे पड़े हैं ।

कंठ माल मोतीन की । सोभत सोभ विसाल ॥

मेरु सिपर पारम फिरत । जानि नछिन्नन माल ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—सोन=शोभा ।

अनुवाद—उसने विशाल मोतियों की जो माला अपने कंठ में धारण कर रखी है वह ऐसी प्रनीत होती है मानो मेरु पर्वत की चोटी पर पारम-मणि का स्पर्श है ।

मिस भीने सुमयक मुप । निपट विराजत नूर ॥

मनों वीर उर काम के । उगे आनि अकूर ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—सुमयक=सुन्दर चन्द्रमा, मुप=मूय ।

अनुवाद—उनके सुन्दर चन्द्रमा पर जरा जग निकली हुई ममथु (मूँछें) अपनी पूर्ण प्राति नहिं ऐसी प्रनीत होनी हैं मानो कामार्थविन्धा में कामदेव के अकुर निकल आए हैं ।

ममय डक निमि चद । वाम वत्त बहि रन पाई ॥

दिल्ली ईस गुनेय । किन्ती वहां आदि अंतार्ड ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—निमि=रात्रि, गुनेय=गुणा का ।

अनुवाद—एक दिन रात्रि के समय चद की पत्नी ने प्रेम से परिपूर्ण प्राति के वद जाने पर पति से दिल्लीश्वर के गुणों और कीर्ति का आशेषान वर्णन करने के लिए ताग्रह किया ।

क्यों भांसि सौं कत डमि । जो पृष्टे तन मोहि ॥

जान वर्ग रमना मरन । ब्रन्नि दिपाऊ नोहि ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—भामि = भामिनी, तत = तत्त्व, व्रन्नि = वर्णन करके ।

अनुवाद—अपनी पत्नी से पति ने इन प्रकार कहा कि यदि मुझ से समस्त तत्व की बात को सुनना चाहती हो तो मेरी वाणी में सम्पूर्ण रत्न में युक्त बातों को ध्यान से सुनो जिसका मागोपाग वर्णन करके तुम्हें दिखाता हूँ ।

सुकी कहै सुक सभरौ, कही कथा प्रति प्रात ।

पृथु भोरा भीमग पहु, किम हुआ धैर विनान ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—पृथु = पृथ्वीराज ।

अनुवाद—शुकी ने अपने प्राण प्रिय शुक ने राजा पृथ्वीराज और भोर भीमराजा से किन कारण से युद्ध हुआ, इन कथा को सुनाने के लिए आग्रह किया ।

कु अरप्पन प्रथिराज । तपै तेजह सु महावर ॥

सुकल बीजु दिन हुते । कला दिन चटत कलाकर ॥

सकर आदि संक्रमन । किरन चाढ़ै किरनाकर ॥

यो मोमेस कुँआर । जोति छिन छिन अति आगर ॥

हय हथिय देत सकै न मन । पल पडन गढ गिरनवर ।

चिहु और जोर दसहूँ दिसा । कीरति विस्तारि महिय पर ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ—सुकल = शुक्ल पक्ष, कलाकार = चन्द्रमा, मकर मन्त्रमन = मकर नक्षत्र, पल = खल, महिय = मही ।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में पृथ्वीराज का प्रशस्ति गायन है । कवि का कथन है कि बाल्यावस्था में ही राजा पृथ्वीराज तप और तेज से महा पराक्रमी के समान प्रगट हो रहा था । शुक्ल पक्ष में जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती हैं उसी प्रकार पृथ्वीराज की कलाएँ भी दिन प्रतिदिन बढ़ती चली गईं । जिस प्रकार मकर नक्षत्र के उपरान्त सूर्य की विरणों का तेज बढ़ता चला जाता है उसी प्रकार मोमेश्वरकुमार पृथ्वीराज का ज्योति सखूह प्रतिक्षण बढ़ता ही चला गया । घोड़े आदि का दान देने से उनके मन में कोई लज नहीं होती

थी । वह दुष्टा को दण्ड देने वाला था तथा दुर्गों को नष्ट कर देने में श्रेष्ठ था । उसका पराक्रम चारों ओर दशों दिशाओं में फैला हुआ था । उसका यश सम्पूर्ण पृथ्वी पर विस्तृत था ।

भोरा भीम भुञ्जंग । तपै गुञ्जर धर आगर ॥
 है गै दल पायक्क । पग्गवल तेजड सागर ॥
 काका सारगदेव । देव जिमि तम वडाइय ॥
 तासु पुत्र परताप । मिध सम दत्त सु भाइय ॥
 परतापसीह अरसीह वर । गोकुलदास गोविंद रज ॥
 हरसिंघ स्याम भगवान भर । कुल अरेह मुप नीर सज ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—गुञ्जर=गुजरात, गुर्जर, है=हय, घोड़ा, गै=गय, गज, पग्ग=खड्ग, प्रताप सीह=प्रतापसिंह, अरसीह=अरिसिंह, गोविंदरज=गोविंदराज, स्याम=स्यामसिंह, भगवान=भगवानसिंह ।

अनुवाद—गुर्जर राजा भोरा भीम पृथ्वी पर तप की खान था तथा वह हाथी, घोड़ों और पदाति सेना से युक्त था, तलवार वल से युक्त और तेज का समुद्र था । उसका चाचा (काका) सारगदेव था । उसमें देवताओं की प्रशंसा के गुण थे । उसका पुत्र प्रतापसिंह था । प्रतापसिंह के उसके ही समान सात भाई थे—प्रतापसिंह, अरिसिंह, गोकुलदाम, गोविंदराज, हरिसिंह, स्यामसिंह और भगवानसिंह । ये सिंह तुम थे और उनके मुख पर कांति घोभायमान रहती थी ।

जोरावर जुरि जङ्गमति । भरे वथ्थ नभ गाज ॥

हुकम स्वामि छुट्टत सु डम । मनौं तीतर पै वाज ॥ ७९ ॥

शब्दार्थ—जुरम=प्रजन, डम=इन प्रकार ।

अनुवाद—उस राजा का आक्रमण प्रचल होता था और वह अपने शत्रु पर उस भयानक गति से आक्रमण करता था जैसे तीतर के ऊपर बाज ।

तिन पर तुट्टे वीज जौं, जिन पर राज अरुट ।

राजमान समुह भरन, ढई न नवह पुट्ट ॥ ८० ॥

शब्दार्थ—ग्रुद्ध=कुपित, समुह=सम्मुख, पुट्ट=पीठ ।

अनुवाद—जिस पर राजा भोराभीम क्रोधित या कुपित होता था उस पर वह विजली के समान टूट पड़ता था तथा राज्य के कार्य सम्मुख होने पर भी उसने कभी पीठ नहीं दिखाई थी ।

सारंग दे सुरलोक गत, भौ प्रतापसी पाट ।

सात भ्रात सेवा करें, तपै तेज थिर थाट ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ—पाट=राजा ।

अनुवाद—सारंगदेव की मृत्यु होने पर प्रतापसिंह उसकी राजगद्दी पर बैठा । वे सातों भाई राजा की सेवा करते थे और वे सब ही सप्रताप, तपस्या-युक्त और आडम्बर सहित स्थिर रूप से अपने अपने स्थान पर स्थापित थे ।

भोरा भीम भुआल के, कोई एक मेवात ।

तिन उज्जारत देम कौं, परि पुकार नृप पास ॥ ८२ ॥

शब्दार्थ—मेवात=मेवाती प्रदेश का, उज्जारत=उजाड़ रहा है ।

अनुवाद—भूपति भोरा भीम के दरबार में प्रातःकाल यह सूचना पहुँची कि कोई मेवाती उसके देश को उजाड़ रहा है ।

प्रात समै पूकार, आई नरिंद भीम दरबार ।

करि नीसान मुधाव, चढि राज साजि आतुरय ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ—नरिंद=राजा, नीसान=नगाडा, मुधाव=चोट, आतुरय=शीघ्रता से ।

अनुवाद—इस प्रकार की सूचना राजा भोग भीम के दरबार में प्रातःकाल पहुँची । राजा ने नगाडों पर चोट करने हुए नेना को नुज्जित कर शीघ्रता से चढाई की ।

चालुक्कह गुज्जर धरा, ईस नेति क्रिय भीम ।

मो उम्मेँ तिहु पुर सुवर, को चपै अरि सीम ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ—भीम=सीमा, तिहु=तीन ।

अनुवाद—चालुक्य देश के राजा ने गुर्जर देश की भूमि पर चढ़ाई की और उस पर स्वामित्व स्थापित किया । उस श्रेष्ठ की बराबरी त्रिलोक में कोई नहीं कर सकता था और कोई भी शत्रु उसकी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता था ।

चढ़ि चलन राज आवाज कीन । नीसान नह वाजे वजीन ॥
चिहु ओर भरनि छुट्टे तुरंग । सजि सिलह भौति नाना अभग ॥ ८५ ॥

शब्दार्थ—चिहु ओर = चारों ओर, भरनि = योद्धाओं के ।

अनुवाद—राजा ने उच्च घोषणा के साथ आक्रमण किया और युद्ध क्षेत्र में बड़े जोर में नगाड़े बजने लगे । वह सेना भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्रों से सुसज्जित थी और उनके घोड़े भी युद्ध क्षेत्र में छूट गए ।

॥ धम धमकि धरनि धाने सुभग । गजिय अकास कै गहर गंग ॥
भय हूह हांक आतंक जोर । सह सुरन फेरि भेरीन घोर ॥ ८६ ॥

शब्दार्थ—गग = दुर्गम, धम-धमकि = धम-धम ।

अनुवाद—पृथ्वी धम-धम के स्वर से भर गई और उसकी गर्जना आकाश और दुर्गम नमूद्र तक नुनाई दी । उन्होंने विकट स्वर से उनको (शत्रु को) गद्गद दिया जिससे उनके मध्य बड़ा भयकर आतंक व्याप्त हो गया तथा भेरी का भयकर स्वर भी सब ओर सुनाई देने लगा ।

उडि रेनु सेन मंटीग अकास । परि रोर मोर जहँ तहँ मचास ॥
धरि रोम मुच्छ मुररंत भीम । रस वीर वक्र सक्रोध हीम ॥ ८७ ॥

शब्दार्थ—रेनु = रेणु, धूल, हीम = हृदय ।

अनुवाद—सेनाओं की परस्पर मुठभेड़ हो जाने के कारण प्रचुर मात्रा में धूल उठी जिससे गगन आच्छादित हो गया । जहाँ पर मेघान जाति के लोग थे वहाँ पर भय में मिश्रित शोर के फैल जाने के कारण नगदट मच गई । राजा भीम प्रोद्यत होकर अपनी मूर्छों को मरोड़ने लगे । वह हृदय में चीर रन के तात्पर्य भयकर प्रोध से परिपूर्ण थे ।

चंपी सु सीम अरियन सुजान । डरा सुदाम नृप सारत ताम ॥
जुररा सिकार तीतर वटेर । पेलत सरित तट भड अवेर ॥ ८८ ॥

शब्दार्थ—जुररा = जुड़ा, पेलत = खेलते हुए ।

अनुवाद—वे तत्काल ही शत्रुओं की सीमा का अतिश्रमण कर गए और उन्होंने नदी के समीप जाकर ठिकाना ढाला तथा वहाँ पर शिकार खेलते हुए उन्हें काफी देर हो गई ।

इहि समय ताम परतापसीह । लहु वंधु साथ अरसी अवीह ॥
एहुते सकल बाहुर ते वेर । नय समरु आड पेलत अवेर ॥ ८९ ॥

शब्दार्थ—लहु = लघु, वन्धु = भाई, अवीह = क्रूर, नय = नदी ।

अनुवाद—तब उस समय प्रतापसिंह अपने छोटे भाई अरिसिंह के साथ उनके पास आए । ये सब लोग काफी देर में मृगया के लिए गए हुए थे और इनकी नदी के किनारे शिकार खेलते हुए बहुत समय हो गया था ।

गजराज नाम साहन सिंगार । सरितान मझिन्ह वह पियै वारि ॥
सुनि मोर दान छुट्टे छँछार । जनु भूत भांति भय भीत भार ॥ ९० ॥

शब्दार्थ—वारि = जल, छछार = मद ।

अनुवाद—वही एक साहन सिंगार नाम का हाथी नदी के मध्य में जल पी रहा था जो यह शोर सुन कर सारा मद भूल गया ।

जमुना कि जगि काली करार । सिर धूनि महावत दियौ डार ॥
गज एक वारि पीवंत दूरि । तिन पर सु तुट्टि जनु सिंघ चूरि ॥ ९१ ॥

शब्दार्थ—तुट्टि = टूटा, आक्रमण किया ।

अनुवाद—जमुना के दूसरे किनारे पर एक दूसरा हाथी जन पी रहा था जिसने कि अपने पीलवान को उठा कर पृथ्वी पर फेंक दिया । उन पर यह पहले वाला हाथी इन प्रकार से भपटा जिस प्रकार में शक्ति के वेग में निह प्रचानक हाथी पर टूट पड़ता है ।

धरि पष पव्व जनु धप्पि धाय । भुज परथौ नभ्भ वहर सुमाय ॥
दिषि दुरप उनहि आवत आन । धुनि करिसु डारि उन पीलवान ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—पष = पख, धप्पि धाय = दौड़ कर ।

अनुवाद—इन लोगो ने उस हाथी को, जिसने पीलवान को जोर से उठा कर फेंका था इस प्रकार दौड़कर आते हुए देखा जिस प्रकार प्राचीन काल में पर्वत अपने पखों सहित उड़ा करते थे तथा जिस प्रकार काले बादल आकाश में फैल जाते हैं ।

धायौ ति समुह साहन सिंगार । जनु वध जंम उप्पर अपार ॥
कलपत पाइ जनु पवन आइ । हल हले पव्व जित तित बिठाई ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—जम = यम, उप्पर अपार = चारों तरफ फैल गए, पव्व = पर्वत ।

अनुवाद—साहन सिंगार नाम का हाथी नम्मुख दौड़ कर आया जैसे यम के वधन चारों ओर फैल गए । जिस प्रकार कल्प की समाप्ति के समय उन्नचास पर्वत चल पड़ती हैं और उनसे हिलने के कारण पर्वत उधर उधर गिर पड़ते हैं ।

जम रूप दूअ जनु जम दूवार । द्वय भ्रात बीच घेरे अमार ॥
इक ओर वारि द्रह गहर गूल । इक जोर जोर वर उच कूल ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—अमार = अमवार, द्रह = तालाब, उच = उच्च ।

अनुवाद—दुधारी तलवागे ने युक्त दोनों घुटनवारें नाईयों के एक ओर तो गहरी जलधानी थी और दूसरी ओर बहुत ऊँचा मिनाम या नचा वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे विकाल रूप बाने वन के द्वारा बीच में ही फटा लिए गए हो ।

परताप सनमुप परथौ जाड । डारत अश्व अभि रिचौ घाड ॥
वहि मीस परन दो हाथ करार । परवूज जांनि विफरथौ विफार ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—सनमुप = नम्मुख, परवूज = गरवूज ।

अनुवाद—प्रतापसिंह साहन सिंगार हाथी के सम्मुख पड गया । हाथी ने उसके घोड़े को मार दिया तब उसने हाथी पर तलवार से आघात किया । उसने हाथी के सिर पर तलवार चलाकर उसके इस प्रकार से टुकड़े कर दिए मानो वह खरबूजा हो ।

जंगनाथ हंडि जनु वटु दोइ । इह भांति कुंभ कुंभी न होइ ॥

गज परचौ धरनि साहन सिंगार । किन्नो अक्राम परताप पार ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—जंगनाथ = युद्ध के स्वामी अर्थात् वीर प्रतापसिंह, हंडि = काटे जाने पर, वटु = मार्ग, कुंभ = हाथी, कुंभी = मस्तक ।

अनुवाद—वीर प्रतापसिंह द्वारा खडित साहन सिंगार नामक हाथी का गडम्यल दो भागो में विभक्त होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह हाथी का मस्तक न होकर दो मार्ग हो । जब वह साहन सिंगार नाम का हाथी पृथ्वी पर गिर पडा तो प्रतापसिंह ने उमका काम तमाम कर दिया ।

अरसीह पुट्ट जग धरचौ देप । मनमुष्प क्रम्यौ सम सीढ भेष ॥

गज गही चौरि सिर पगध सुंड । द्विय गुरज चीर द्वय हथिथि मुण्ड ॥ ६७ ॥

फट्यौति सीस भइ पंच फारि । गज हरचौ जानि गिरिवर विसाल ॥

सुनि वत्त राज भोरा सु भीम । पायौ अनत दुप आप हीम ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—क्रम्यौ = आक्रमण किया, सीह = सिंह; पगध = पगड़ी ।

अनुवाद—अरिसिंह ने पीछे से दौडकर आते हुए हमारे हाथी को देखा और उम पर सिंह के समान आक्रमण किया । जब हाथी ने दौडकर अरिसिंह के सिर की पगड़ी पकड कर खींची तब उसने दोनों हाथो से गदा को उठा कर उन हाथी के सिर पर वार किया जिससे उन हाथी का गडम्यल फट कर पांच टुकड़े हो गया । वह हाथी भूमि पर घडाके के नाथ इस प्रकार गिर पडा जिन प्रकार से बड़ा पर्वत गिरता है । राजा भोरा भीम ने जब इस वार्ता को सुना तब उसने अपने हृदय में अनन्त वेदना का अनुभव किया ।

फह वाव कियो नृप अप्प साम । तुम सो न हमहि चारुह काम ॥ ६९ ॥

अनुवाद—उमने (राजा भोरा भीम ने) उन दोनों को अपने सामने बुलाया और उनसे कह दिया कि तुम्हारे जैसे मेवको को सेवा में रखने की इच्छा नहीं है ।

भा उभय अहँकार करि, हन्यौ सुवर गजराज ।
दोस हमहि लग्यौ नहीं, आपहि कीन अकाज ॥ १०० ॥

अनुवाद—राजा भोरा भीम को यह भ्राति हो गई कि दोनों ने अभिमान के कारण अति श्रेष्ठ हाथियों को मार डाला है अतः मेरे पर कोई दोष नहीं है, इन्होंने अपने आप ही बुरा काम किया है ।

सात भ्रात निज वात सुनि, भए अण्ण चलचित्त ।
पृथ्वीराज सुनि कुंअर ने, आप बुलाये हित्त ॥ १०१ ॥

शब्दार्थ—अण्ण=आप ही, हित=प्रेम में ।

अनुवाद—मातो भाट्यो ने जब वह बात सुनी (उपर्युक्त) तब अपने हृदय में बड़े चिन्तित हुए और चल पड़े । कुमार पृथ्वीराज ने जब उनके सम्बन्ध में सुना तो उनको बड़े प्रेम में अपने पास बुलाया ।

दिग हस्थ लिपि गाम पट, रहे वास घिर आनि ।
चालुक चातुर वीर वर, जिन अन्त मुष पानि ॥ १०२ ॥

शब्दार्थ—गाम=ग्राम, पट=वस्त्र ।

अनुवाद—पृथ्वीराज ने उन वीरों को जिनके मुख पर तेज विद्यमान था हाथी दिए, कई ग्राम उनके नाम कर दिए, उन्हें अमूल्य वस्त्र दिए और रहने के लिए घर दिए ।

सम डक सोम कुमार, सम सार्भतन मूर नम ।
सोम नीम भुअर भार, सो बैठे सुभ सुभा रचि ॥ १०३ ॥

शब्दार्थ—भुअर=भूमि, पृथ्वी ।

अनुवाद—सोमवर्ग के कुमार पृथ्वीराज जिनके निर पर भूमि का भार

शोभायमान है ने एक बार दूर-बीरो और सामतो के साथ शुभ सभा का आयोजन किया ।

रची सुभ सोम सभा पृथिराज । विराजति मेरु जिसे भर साज ॥

भुजा सम कन्ह रचे चहुवान । तिनेँ मुख राजत है मुह पान ॥ १०४ ॥

अनुवाद—सोम अवतम पृथ्वीराज ने शुभ सभा का आयोजन किया । वे सुमज्जित भटो के मध्य में मुमेरु पर्वत के समान शोभायमान हो रहे थे । उनके दक्षिण पार्श्व में कन्ह चौहान शोभा पा रहा था और उसके मुख की शोभा शमश्रु और पान बढ़ा रहे थे ।

जिनेँ चप कपै भर मान । कपे जनु मोरन श्रप्य विवांन ॥

रहै चप वारि सुरातन एम । जवा अन प्रात क्रियो सक जेम ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—श्रप = सर्प, सक = शुक्र अर्थात् इन्द्र ।

अनुवाद—उमको (कन्ह चौहान को) देख कर बड़ी आन वाले भट उमी प्रकार कांपने लगते हैं जैसे कि मोर को देख कर माँष कांपने लगता है और भाग जाता है । (उम सभा के मध्य में) कन्ह चौहान उती दीप्ति के साथ विराजमान है जिस दीप्ति के साथ इन्द्रादि देवताओं की सभा में अहोरात्र विद्यमान रहता है । और कन्ह के नेत्रों में यह दीप्ति उमी प्रकार देदीप्यमान थी जिस प्रकार मदिरापान करने वाले के नेत्रों में अरुणिमा ।

तहां वर चांवड राह राजत । जुध मधि चांवड रूप सजत ॥

नृसिंघ विराजत सिंघ जिसोह । विभीषन भाक्य मास जिसोह ॥ १०६ ॥

शब्दार्थ—चावड = चामुण्ड, राह = राजा, राजत = शोभायमान, जुध = योद्धाओं के, मधि = मध्य में, सजत = शोभायमान थे ।

अनुवाद—वही पर चामुण्ड राजा भी शोभायमान थे और योद्धाओं के के मध्य में उनका रूप चामुण्डा देवी के समान प्रतीत होता था । पृथ्वीराज की सभा में कैलाश गम की सभा के विभीषण के समान प्रतीत हो रहे थे ।

सर्वे भर और उत्थ्य सुमंत । तिनं मधि पीथ कु आर रजत ॥

मनों मुकल पय बीज कौ चद । तिया रस राजत तारन वृन्द ॥ १०७ ॥

शब्दार्थ—पीथ कुमार=कुमार पृथ्वीराज, पप=पक्ष, तिया-रस= स्त्री का रस अर्थात् शृङ्गार रस, तारन-वृन्द=तरुणों के समूह में ।

अनुवाद—कुमार पृथ्वीराज उन ममस्त युवक भटों के मध्य में उसी प्रकार घोभायमान थे जिस प्रकार वे शुक्ल पक्ष में द्वितीया का चन्द्रमा तथा तरुण वृन्द (युवक-युवतियों) में शृङ्गार रस की वार्ता ।

प्रतापसि सातउ भ्रात सरीस । प्रथी पति आइन माइय सीस ॥
ति सोहत मानुस त संत मेर । किथौ सत सिंधु सुहंत उजेर ॥ १०८ ॥

शब्दार्थ—ति=वे, मानुस=मनुष्य, सत=सप्त ।

अनुवाद—प्रतापसिंह ने मातो भाइयों के साथ आकर पृथ्वीपति को नम-
स्कार किया । वे (मातो) ऐसे जोमित हो रहे थे मानो मानव रूप में सात
मुमेष पर्वत हो अथवा सप्त सागर अपनी परिपूर्णता के कारण घोभायमान हो
रहे हों ।

सनमुष कन्ह प्रतापसि आइ । ठई तिन बैठक साल सुभाइ ॥
कहै भर भारथ वत्त स वांन । धरथौ प्रतापसि मुच्छन पांन ॥ १०९ ॥

शब्दार्थ—पान=पाणि ।

अनुवाद—कन्ह चौहान के समक्ष प्रतापसिंह आया और वही पर स्थिरता
पूर्वक समीचीन ढंग से बैठ गया । उन समय चारण सुन्दर वाणी में युद्ध की
वार्ता को कह रहा था । उसको सुनते ही प्रतापसिंह का हाथ अनायास मूछों
पर चला गया ।

लपी चहुआन सु कन्ह अपन । कढी असि तव्व असंप भपन ॥
दई असि दौरि जनेउ उतारि । रही धर अद्ध उपंस विचारि ॥ ११० ॥

शब्दार्थ—अपन भपन=अमन्य भाषण करते हुए अर्थात् अनाप-गनाप
बकते हुए, जनेउ उतारि=प्रहार का एक ढंग ।

अनुवाद—तब कष्ट चौहान की दृष्टि उन पर पड़ गई और तब उनने
अनाप गनाप बकवाद करते हुए जोधता से अपनी तलवार को निकाला और
दौटकर जनेऊ आक्रमण किया ।

मनों सब नागर साधु कटंत । इही जनु गंठि विचै विच तत ॥
परयो परताप प्रथी पर आप । भई भर मध्य सुजोर अमाप ॥ १११ ॥

शब्दार्थ—गठि = गाँठ ।

अनुवाद—मरल है ।

भई हूह मभमह महल, परयो भुंमि परताप ॥
हांक वीर वज्जे विपम, अरसी कुप्पो आप ॥ ११२ ॥

शब्दार्थ—हांक = शोर करते हुए, कुप्पो = क्रोधित हुआ ।

अनुवाद—महल में कोलाहल मच गया कि प्रतापसिंह मर कर घरणी पर घराशायी हो गया है । वीरों ने शोर करते हुए विकट आक्रमण किया तथा अरिसिंह मन में अति क्रुपित हुआ ।

भई दूह परताप । परयो दिप्यो अरसी वर ॥

उद्यो कहु तरवारि । दई भुज कन्ह हुवाम कर ॥

इक्क सीह वर ओर । गैर पप्पर गहि डारी ॥

एक अगनिता मद्धि । आनि कंपी धृत धारी ॥

चहुआन कन्ह अगगै सुवर । ता पच्छै लोहन दग्यो ॥

जाजुलित सत्त वर वीर मति । वीर वीर रस सौं छग्यो ॥ ११३ ॥

शब्दार्थ—सीह = सिर, पप्पर = कवच, जाजुलित = जाजबल्य ।

अनुवाद—उस समय बड़ा शोर हुआ और श्रेष्ठ अरिसिंह ने जब प्रतापसिंह को गिरा देखा तब उठ कर अपनी तलवार निकाल कर कन्ह के बाएँ हाथ पर प्रहार किया, एक बार सिर पर किया और दूसरा हाथ कवच पर फँका । तदुपरात एक हाथ कुक्षि में भागा जिससे वह धैर्य धारण रखने वाला कन्ह काप गया । वे मानो भाई सात्वित प्रतिभा से प्रज्वलित थे तथा वीर योद्धा वीर रस से परिपूर्ण थे ।

उट्टि कुंवर पृथिराज लपि, गयो महल निज मद्धि ।

वै किवाट मिलि थाट जुध, मन्थो कलह मभ मद्धि ॥ ११४ ॥

शब्दार्थ—लपि = लपि, देनकर ।

अनुवाद—इस भयकर युद्ध को देखकर कुमार पृथ्वीराज अपने महल के बीच में चला गया और किवाड़ लगा लिए तथा योद्धाओं में आमने-आमने भेंट होने पर सभा के मध्य में ठाठ से युद्ध होने लगा ।

कढ्ढी असि अरिसिंघ । नरसिंघस्य मारंयं सीसं ॥

दई गुरज गुर अड्डुं । वड गुज्जरं रंभ कदाई ॥ ११५ ॥

शब्दार्थ—गुरज=गदा, कदाई=कघा ।

अनुवाद—अरिमिह ने तलवार निकाल कर नरसिंह के सिर को काट डाला । उसके उदर में गदा से भारी प्रहार किया और फिर गुर्जर देश के राजा के कंधे पर आक्रमण किया ।

दिपि चावडं । पिजि चावडं ॥

लोह चावडं । मन चावडं ॥ चावड ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—दिपि=दृश्य, पिजि=क्रोध से भर गया ।

अनुवाद—चामुण्डराय ने जब इस प्रकार का दृश्य देखा तो वह क्रोध से भर गया । उसने तलवार उठा ली और उसका मन चामुण्डा देवी के नमान भयकर हो गया ।

वदिय जंग उत्तंग । जंग जनु दाह जु लग्गिय ॥

परिय रौर राव रन । जुरिय जुध कन्ह अभिगगिय ॥

मारि टारि अरिसीह । हथ्यौ गोयद मेह गति ॥

कढ्ढि हथ्य जम दढढ । दई चहुआन कृप घत ॥

करि रोप कन्ह कर चंपि सिर । दो हथ्यन भेजी एहिय ॥

निकसीय प्रान गोविंद घर । जोति भेदि जोतिह मिलिय ॥ ११७ ॥

शब्दार्थ—जंग=युद्ध, उत्तंग=बड़े जोर से, मेह=मेघ ।

अनुवाद—उम समय नटाई बड़े जोर से बड़ी मानों युद्धाग्नि चांगे और प्रज्वलित हो गई हो । बहून गारे राजा कण्ह के साथ हो गए और नटाई बड़े जोर से हुई । उन्होंने अरिमिह को मार कर गिरा दिया और गोविन्ददाम को

वर्षा की गति के समान तेजी से भगा दिया । फिर उसने (कण्ह ने) चौहान की कुक्षि पर इतनी जोर से प्रहार किया मानो हाथ से यम की दाढ़ को निकाला हो । तब विपक्षी चौहान ने क्रुद्ध होकर कण्ह पर तलवार चलाई जो उसके सिर के ऊपर से निकल गई । तब कण्ह ने दोनों हाथों से विपक्षी पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप गोविन्दसिंह के प्राण निकल गए और उसकी आत्म-ज्योति परम-ज्योति में मिल गई ।

कोलाहल दरवार भौ । मुनि चालुक भ्रत सथ्य ॥

धसिय पौरि गज मत्त सम । पुच्छत-पुच्छत कथ्य ॥ ११८ ॥

शब्दार्थ—भौ = हुआ, भ्रत = मृत्यु, सथ्य = मायियों की, पौरि = दरवाजा, कथ्य = कहानी ।

अनुवाद—जब चालुक्य वंश के मात वीरो की मृत्यु एक माय मुनी गई तब दरवार में शोर मच गया और उसी क्षण पुरवानी जन इस बात को पूछते पूछते उन्मत्त हाथी के समान महल में घुम आए ।

छिछ रुधिर उट्टत गिरिय । परिय सत्र परिधारि ॥

दिपि चालुक भ्रत तेह टग । कुलह वाजि जनु डारि ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—छिछ = छीटे, रन् = स्नान ।

अनुवाद—जिस प्रकार से यज्ञों में लड्ग प्रहार से रक्त की धारा फूट पड़ती है उसी प्रकार ने वहाँ भी रक्त की धारा बह रही थी । उस स्नान पर चालुक्य भाइयों को मरा पटा देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वाज द्वारा कुनहरी चिड़ियाँ मारी गई हों ।

संकर सिंघ कि छुट्टि । छुट्टि इन्द्रह कि गरुध्र गज ॥

कि महिप छुट्टि मय मत्त । भरिय दीयौ कि दुष्ट कजि ॥

भौ कि हास रस रोस । मद्धि रावत्तर विरच्चिय ॥

कोलाहल बल कूक । मज्ज रावर हल मच्चिय ॥

चालुककपवास ताकथ्य कथि । कोलाहल इन जानि घर ॥

छंडिय सयल घोहिथ नृपति । हनिग कन्ह सारंगहर ॥ १२० ॥

शब्दार्थ—सकर=शृङ्खला, गरुड गज=बड़ा हाथी अर्थात् ऐरावत,
महिष=भैंसा, मय मत्त=मदोन्मत्त, पवास=सेवक ।

अनुवाद—जिन समय कन्ह ने समस्त नृप-समूह को छोड़ कर सारगदेव के
उन पुत्रों को जिन्होंने राजा के रुष्ट होने के कारण अपनी मातृभूमि का त्याग
कर दिया था मार डाला उन समय चारों ओर की सेनाओं तथा राजकुलों में
इतना शोर मचा मानों दुष्टों को भगाने के लिए शृङ्खला में बंधा हुआ सिंह
छूटा हो अथवा इन्द्र का बड़ा हाथी ऐरावत छूटा हो या मदोन्मत्त कोई भैंसा
छूटा हो या हास्य के बीच में क्रोध उद्बुद्ध हो गया हो ।

भर प्रताप दरवार के । द्वार परे मत मत्त ॥

सुनत वत्त डह कहि परे । मनु निस तुट्टि नछत्त ॥ १२१ ॥

शब्दार्थ—भर=भट, परे=परे, मतमत्त=मदमस्त, टुट्टि=टूट पड़े
हो, नछत्त=नक्षत्र ।

अनुवाद—प्रतापसिंह के मदमस्त भट दरवार के द्वार पर मरे हुए पड़े हैं
यह समाचार सुनकर लोग ऐसा कहते थे कि मानों रात्रि में तारे टूट पड़े हो ।

सार सिर मार विकरार रक्तन भरत ।

परत धरनीय ठरैं जरकि जूपी ॥

चक्र चहुवांन चालुल्ल भृत उपर चर ।

कोपियं कन्ह मनौ काल रूपी ॥ १२२ ॥

शब्दार्थ—विकरार=विकराल, कोपियं=क्रोध, मार=तलवार ।

अनुवाद—जब तलवार की विकराल चोट सिर पर हुई तब रक्त स्त्राव
होने लगा और धनु पृथ्वी पर कट-कट कर टुकड़ों में लगे जिससे कि वज्र स्तंभ
से बंधे हुए बलिदान के पशु के समान भक्त मिली और जिन समय क्रोधाग्निभूत
होकर कन्ह चालुक्य भाइयों पर प्रहार कर रहा था उस समय ऐसा प्रतीत
होना था मानों यम कन्ह के रूप में माझात रूप धारण करके आ गया हो ।

रुंड भरुड किय तु ड मुँडन रुरत ।

वाहि सिर मार मनौ मेह बुद्धै ॥

कूह करि जूह समूह को कोक हर ।

रोस रिम राह जुम जीव छुट्टै ॥ १२३ ॥

शब्दार्थ—बुद्धै = वरसना, राह = राहु ।

अनुवाद—उसने (कन्ह राजा ने) मुखो और घडो को अलग करके युद्ध-स्थली में फेंका दिया । तदुपरात उसकी तलवार इस प्रकार चलने लगी मानो वर्षा धारा वरम रही हो । कन्ह रूपी चन्द्रमा अपनी तलवार रूपी उजाले से योधागण रूपी अधकार को दूर कर रहा था । वह अपने प्रतिद्वन्दी की सेना का इस प्रकार हनन कर रहा था मानो कोई राहु आ गया हो और लोगों का प्राण हरण कर रहा हो ।

पांनि करि पांनि अरि पांनि करनीय डक ।

सीस अरि पारि सब पेत सीच्यौ ॥

आत सोमेस नृघात भञ्जन भरन ।

पेत पयकार पय काल पीज्यौ ॥ १२४ ॥

शब्दार्थ—पांनि = पाणि, पांनि = तलवार ।

अनुवाद—(कन्ह ने) हाथ में तलवार धारण करके, हाथ से शत्रुओं को दबा कर, तलवार से रिपुओं के मिरो को भेद कर समस्त रणक्षेत्र को रक्त-सिंचित कर दिया ।

हनिन निनायकं सेना, कथितं न च पूर्वयम् ।

अयुद्धं चक्रत एषां, विना स्वामि रणे युधम् ॥ १२५ ॥

शब्दार्थ—हनिन = मार कर, निनायक = विना नायक की ।

अनुवाद—सरल है ।

नीठ विसासत अप्प भर, गहौ कन्ह चहुआंन ।

गए प्रेह लै सकल मिलि, पृथ्वीराज अकुलान ॥ १२६ ॥

अनुवाद—कन्ह ने अनिच्छा से और बड़ी कठिनाई पूर्वक अपने योद्धाओं की बात स्वीकार की । तदुपरात वे योद्धा कन्ह चौहान को घेर-घार कर महल में से गए जहाँ पृथ्वीराज व्याकुल बैठा हुआ था ।

पारि भित्त चालुकक भर, मध अजमेर प्रमान ।

सात आत भीमह हते, रन जीत्यौ भर कानं ॥ १२७ ॥

वत्त सुनी तव कन्ह ने, पिज्यौ कुँअर प्रथिराज ।

वेठि रहे तव तव निज सुघर, ऐदरघार समाज ॥ १२८ ॥

शब्दार्थ—वत्त = वार्ता, कान = कन्ह ।

अनुवाद—चालुक्य के साथी एव भट अजमेर के मध्य में मारे गए और कन्ह ने राजा भोरा भीम के सातों भाइयों को मारकर युद्ध में विजय प्राप्त की है जब यह बात पृथ्वीराज के पास पहुँची तब वह बहुत खीझा उस समय कन्ह अपना दरवार और समाज तू अपने पास ही रख कह कर अपने घर में बैठ रहा ।

तीन दिवस अजमेर में, परी हट्ट हटनार ।

हह कोह चज्यौ विपम, लग्यौ सु भूत भुआर ॥ १२९ ॥

शब्दार्थ—हटनार = हडताल, कोह = क्रोध ।

अनुवाद—तीन दिन तक अजमेर के बाजार में बराबर हडताल रही तथा कन्ह के क्रोध से पुरवानियों को ऐसा भय हुआ मानो राजा कन्ह को प्रेत लग गया हो ।

मधि बाजार चलि रुधिर नदि, रुत तुंड घन मुंड ।

वरकि कन्ह चहुआन करि, तिल तिल सम तन तु ड ॥ १३० ॥

शब्दार्थ—मधि = मध्य में ।

अनुवाद—अजमेर के बाजारों में रक्त की नदियाँ चल रही थी क्योंकि कन्ह ने क्रोध में आकर शत्रु-कालों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे ।

मात दिवस जब गए । कन्ह दरवार न आए ॥

तव प्रथिराज कुआर । अप्प मनए ग्रह जाए ॥

तुम ऐसी क्यों करी । अप्प मिर चढाइ सुफाई ॥

कहिहैं सध चहुआन । एने चालुकक सुराई ॥

आए ति विपे अप्पन सुघर । सो रावर ऐसी करिय ॥

इह दोम अप्प लग्यौ खरी । वत्त वित्तरिय जग वुरिय ॥ १३१ ॥

शब्दार्थ—अप्य=आप, मनए=मनाने के लिए, ग्रह=घर; सुकाई=कलक, वित्तरिय=फँलेगी, बुरिय=बुरी ।

अनुवाद—जब सात दिन व्यतीत हो जाने पर भी कन्ह दरबार में न पधारे उस समय कुंभर पृथ्वीराज स्वयं उसको मनाने के लिए घर पर गए और कहा । आपने ऐसा कार्य क्यों किया जिसका कलक आपके सिर पर लग गया है । सब यही कहेंगे कि चौहानों ने बालुक्य राजाओं को अकारण ही मारा है । वे तो अपने घर पर आपत्ति के मारे आए थे तब पर आपने यह अत्याचार किया । यह दोष आप पर पूरा लग गया है और यह बुरी बात सारे संसार में फैल गई है ।

कहीं कन्ह चहुआन तव । मो बैठे कोड आनि ॥

सभा मद्धि संभरि अचर । मुच्छ धरै क्यों पानि ॥ १३२ ॥

शब्दार्थ—मो=मेरे, आनि=अन्य ।

अनुवाद—तब कन्ह चौहान ने कहा कि नभर शासक के अतिरिक्त, मेरे रहते हुए, सभा के मध्य में आकर मूँछ पर कोई हाथ कैसे रख सकता है ।

करी अरज पृथिराज वर । जौ मानौ इक कन्ह ॥

सभा बुराई जौ मिटै । चप बांधि पट्ट रतन ॥ १३३ ॥

शब्दार्थ—अरज=विनती; चप=चक्षु, पट्ट रतन=जडाऊ पट्टी ।

अनुवाद—श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने विनम्रतापूर्वक कन्ह से कहा कि यदि आप मेरी एक बात मानें तो इस प्रकार की बुरी घटना पुनः नहीं घटेगी । अस्तु आपके चक्षुओं पर रतन जटित पट्टी बांध दी जाए ।

तव पृथिराज विचार करि । चप आरथी हो पट्ट ॥

बहुरि कोड भर भोरही । धरत परै उह वट्ट ॥ १३४ ॥

शब्दार्थ—बहुरि=फिर, वट्ट=मार्ग ।

अनुवाद—तब पृथ्वीराज ने यह सोच नम्र कर कि भूल से यदि कोई वीर मूँछ पर हाथ रख देगा तो फिर उसे इसी मार्ग में जाना पड़ेगा राजा कन्ह के नेत्रों पर पट्टी बांध दी ।

मनी वत्त सुसत्य मन । लै जराव को पट्ट ॥

राजन कन्ह चप वधही । मनौ सिरी गज घट्ट ॥ १३५ ॥

शब्दार्थ—मनी=मान ली, वत्त=वात चीत, वार्ता ।

अनुवाद—कन्ह ने इस बात को जब सच्चे मन से न्याय सगत मान लिया तब पृथ्वीराज ने जडाऊ पट्टी लेकर कन्ह के नेत्रों पर इस प्रकार बांध दी जैसे मस्त हाथी के सिरी बांध दी गई हो ।

पाव लप्प परिमान । मोल किं भति ठहराइय ॥

तौल टक इक्कीस । नयन आकार सवारिय ॥

जरिय जवाहर मद्धि । अरक उद्योत प्रकासिय ॥

दिष्टि मडि देपत । दुअन उर अदर आसिय ॥

कंचन किलाव लगाय कल । पट्टी वधिय चंद भट ॥

तिहि वेर कन्ह चहुआन चप । रूप प्रगटि अति पित्तिवर ॥ १३६ ॥

शब्दार्थ—सवारिय=मवारने वाली थी, जरिय=जड़ दिया गया,

अरक=मूर्त्य, दिष्टि=दृष्टि, दुअन=दोनों, किलाव=पल ।

अनुवाद—इस पट्टी का मूल्य अनुमानत पाव लक्ष स्थिर किया गया । वह तौल में इक्कीस टक थी तथा नेत्रों के रूप को मवारने वाली थी । उसके बीच में जडा हुआ जवाहर हीरा ऐसा प्रतीत होता था मानो उदित सूर्य प्रकाशमान हुआ हो । इससे उसके नेत्रों की दृष्टि ढक गई और ऐसा होने पर दोनों के मन भय भीत हो रहे थे । सुवर्ण पल लगी पट्टी को उनके नेत्रों पर बांध दिया गया और चहुआन ने तीन बार उसे अपने नेत्रों से देखा । उसके मुख से क्षत्रियोचित दीप्ति प्रगट होने लगी ।

पाटी वधिय कन्ह चप । इह ओपम करि अग्रिय ॥

तन सरवर जल वीर रम । ओटा बांधि मुराप्पि ॥ १३७ ॥

शब्दार्थ—ओपम=उपमा ।

अनुवाद—कन्ह के लोचनों पर पट्टी बंधी देखकर कवि चन्द्र यह उपमा देते हैं कि मानो कन्ह का शरीर वीर रम रूपी जल से भरा हुआ सरोवर है

। और उसकी मुरक्षा के लिए पट्टी के रूप में चारों ओर बाँध बाँध दिया गया है ।

सो पट्टी निस दिन रहै । छोरि देइ द्वै ठाम ॥

कै सिव्या बामा रमत । कै छुट्ट सग्राम ॥ १३८ ॥

शब्दार्थ—छोरि देइ = छोड़ करके, मिज्या = शय्या ।

अनुवाद—वह पट्टी कण्ह के नेत्रों पर रात दिन रहती थी और केवल दो अवसरों पर ही खुलती थी । एक तो कामिनी के साथ शय्या पर काम-क्रीड़ा करते समय और दूसरे युद्ध के अवसर पर ।

अति दुख मन्यौ भीम हिय । लिखि कगगय चहुआन ॥

सत्त भ्रात मेरे हते । डहै बैर अप्पान ॥ १३९ ॥

शब्दार्थ—सत्त = नप्त, अप्पान = आप ।

अनुवाद—राजा भोरा भीम ने हृदय में बहुत दुःख अनुभव किया । उसने पृथ्वीराज को लिखा कि मेरे सात भाइयों को आपने मारा है अतः आप मेरे शत्रु हैं ।

मुनिय राज चहुआन वर । दिय कागद फिरि तेह ॥

जब तुम मगौ बैर वर । तब हम बैर सुदेह ॥ १४० ॥

शब्दार्थ—तेह = उसको ही, मगौ = मागते हो या ठानते हो ।

अनुवाद—श्रेष्ठ चाँहान राजा ने जब यह सुना तब उसने उस पत्र को उसको (दूत को) ही दे दिया और कहा कि जब तुम बैर ही ठानते हो तो यही सही, हमें न्वीकार है ।

वचि कगगद चाल्लुक । रोस लग्यौ अयान कह ॥

करो सेन मव णक । चलो अजमेर देस रह ॥

तब क्यौ वीर परधान । माम पावम्स रहे घर ॥

करि कात्तिप घन कटक । हनै चहुआन मोमवर ॥

सुनि राज अप्प मन्यौ मुहिय । भत्तरु सब जन अवरनर ॥

उपसम्म रोस चालुक नृप । पिन पिन वित्तय जेमथिर ॥ १४१ ॥

शब्दार्थ—अयान = अज्ञान; मास-पावम्स = वर्षा ऋतु, कात्तिप = कार्तिक, उपमम्य = शान्त, पिन-पिन = क्षण-प्रतिक्षण, थिर = स्थिर ।

अनुवाद—अज्ञानी भीम इस पत्र को पढ़कर क्रोध में आ गया और आज्ञा दी कि समस्त सेना को एकत्रित कर अजमेर देश पर अभियान करो । उस समय प्रधान वीर (मन्त्री) ने कहा कि वर्षा ऋतु में घर पर ही रहना चाहिए । कार्तिक के प्रारम्भ होते ही विगल सेना सुनज्जित कर के प्रतिगोघ के रूप में सोमेश्वर को मारा जाए । इसे राजा भीम ने अपने हृदय में समझा तथा अन्य लोगों को भी यह बात अच्छी लगी । (इस प्रकार उस चतुर मन्त्री ने) प्रति क्षण बढ रहे चालुक्य भूपति के क्रोध को शांत किया ।

रहै राज अजमेर महि । सभरेस चहुआन ॥

निसि दिन यौं क्रीला करै । ज्यौं अवतार सुकान्ह ॥ १४२ ॥

शब्दार्थ—क्रीला = क्रीडा ।

अनुवाद—उन दिनों कुछ समय तक संभर देश के चौहान राजा (पृथ्वी राज) अजमेर में ही रहे तथा उन समय वह इस प्रकार क्रीडा करते थे जिन प्रकार भगवान ने कृष्णावतार के रूप में की थी ।

संभरि वै चहुआन कै, अरु गज्जन वै साह ॥

कहाँ आदि किम वैरहुअ, अति उत्तकठ अथाह ॥ १४३ ॥

शब्दार्थ—गज्जन वैसाह = गजनी के अधिपति, किम = किस प्रकार ।

अनुवाद—कवि चन्द्रबन्दाई अपनी पत्नी से कहते हैं कि नभगपति चौहान और गजनीपति शाहबुद्दीन में किस प्रकार वैर का सूत्रपात हुआ उनकी रचि-कर कथा का (मैं) वर्णन करता हूँ ।

बंधव साहि सहाव । मीर हुस्सेन वान धर ॥

निज वान सुप्रमान । वान नीमान बंध सुर ॥

गान तान मुज्जान । बाहु अज्जान वानवर ॥

मेव राज परवान । उश जस थान जुमक भर ॥

उद्धारचित्त दातार अति । तेग एक बंटै विसव ॥

सकेत साहि साहाव तिन । तेज अजै, जयमंत प्रव ॥ १४४ ॥

शब्दार्थ—वान धर = धनुंधारी, वाहु-अज्जान = अजान वाहु, लबी भुजा वाला, प्रव = गर्व ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन के बन्धु-वाधवों में मीर हुस्सेन नाम का धनुंधारी सामंत था । वह अपनी प्रतिज्ञा का भली प्रकार से पालन करने वाला, शब्द-भेदी बाण चलाने वाला, सगीतादि विषयों में दक्ष, लम्बी भुजा वाला, श्रेष्ठ वक्ता, राजनीति के अतर्गत भेद नीति में प्रवीण, यशधारियों में श्रेष्ठ स्थान रखने वाला, अति वीरता से युद्ध करने वाला, उन्नत मन वाला, बड़ा दानी, दुर्घर्ष तलवार को धारण करने वाला, शाह शाहबुद्दीन भी जिसका ध्यान रखता था ऐसा वह वीर, तेजस्वी, प्रतापी, अजय तथा दूसरों के दर्प को दलने वाला था ।

इष्पि बधु आचार । मीर उमराव जंपि जस ॥

एक पात्र साहाव । चित्ररेपा सु नाम तस ॥

रूप रंग रति अंग । गान परमान विचप्पन ॥

वीन जान वाजान । आनि बत्तीमह लच्छन ॥

दस पच वरष वाचा सुवच । सु प्रासाद साहाव अति ॥

आसिक्क ताम हूस्सेन हुआ । प्रीति परस्पर प्रान गति ॥ १४५ ॥

शब्दार्थ—जपि = कहना, माहाव = शाहबुद्दीन, वन = उनका, विचप्पन = विचक्षण, मुप्रसाद = कृपा-पात्री, आसिक्क = आशिक ।

अनुवाद—उसके मुआचरण और वुद्धि को देखकर मीर और उमराव भी उसकी कीर्ति को कहते थे । शाहबुद्दीन के पास एक चित्र-रेखा नाम की वंश्या थी । उसका रूप-रंग और अंग रवि सदृश्य थे तथा वह गान विद्या की बड़ी पंडिता थी । वह वीणा बजाना जानती थी और बत्तीम-लक्ष्णों से युक्त थी । वह पंद्रह वर्ष की आयु की थी तथा मधुर भाषिणी थी । वह शाहबुद्दीन की अति कृपा-पात्री थी । उनके प्रति हुस्सेन आशिक हुआ और दोनों में परस्पर प्रेम दो देह और एक प्राण तुल्य हो गया ।

शब्दार्थ—अयान = अज्ञान, मास-पावस्स = वर्षा ऋतु, कातिप = कार्तिक, उपसम्य = शान्त, पिन-पिन = क्षण-प्रतिक्षण, थिर = स्थिर ।

अनुवाद—अज्ञानी भीम इस पत्र को पढ़कर क्रोध में आ गया और आज्ञा दी कि समस्त सेना को एकत्रित कर अजमेर देश पर अभियान करो । उस समय प्रधान वीर (मन्त्री) ने कहा कि वर्षा ऋतु में घर पर ही रहना चाहिए । कार्तिक के प्रारम्भ होते ही विशाल सेना सुमज्जित कर के प्रतिशोध के रूप में सोमेश्वर को मारा जाए । इसे राजा भीम ने अपने हृदय में समझा तथा अन्य लोगों को भी यह बात अच्छी लगी । (इस प्रकार उस चतुर मन्त्री ने) प्रति क्षण बढ़ रहे चालुक्य भूपति के क्रोध को शांत किया ।

रहै राज अजमेर महि । सभरेस चहुआन ॥

निसि दिन यों क्रीला करै । ज्यों अवतार सुकान्ह ॥ १४२ ॥

शब्दार्थ—क्रीला = क्रीडा ।

अनुवाद—उन दिनों कुछ समय तक सभर देश के चौहान राजा (पृथ्वी राज) अजमेर में ही रहे तथा उन समय वह इस प्रकार क्रीडा करते थे जिस प्रकार भगवान ने कृष्णावतार के रूप में की थी ।

सभरि वै चहुआन कै, अरु गज्जन वै साह ॥

कहौं आदि किम वैरहुअ, अति उत्कठ अथाह ॥ १४३ ॥

शब्दार्थ—गज्जन वैसाह = गजनी के अधिपति, किम = किस प्रकार ।

अनुवाद—कवि चन्द्रबरदाई अपनी पत्नी से कहते हैं कि मभगपति चौहान और गजनीपति ग्राहवुद्दीन ने किस प्रकार वैर का मूत्रपात हुआ उनकी रचि-कर कथा का (में) वर्णन करता हूँ ।

वधव साहि सहाव । मीर हुस्तेन वान धर ॥

निज वान सुप्रमान । वान नीसान वधै सुर ॥

गान तान मुज्जान । याहु अज्ञान वानवर ॥

भेव राज परवान । उअ जस थान जुमक भर ॥

उद्धारचित्त दातार अति । तेग एक वटै विसव ॥

संकेत साहि साहाव तिन । तेज अजै, जयमत प्रव ॥ १४४ ॥

शब्दार्थ—वान धर = धनुंवारी, बाहु-अज्जान = अजान बाहु, लवी भुजा वाला, प्रव = गर्व ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन के बन्धु-बाघवो में मीर हुस्सेन नाम का धनुंधारी सामंत था । वह अपनी प्रतिज्ञा का भली प्रकार से पालन करने वाला, शब्द-भेदी बाण चलाने वाला, सगीतादि विषयों में दक्ष, लम्बी भुजा वाला, श्रेष्ठ वक्ता, राजनीति के अतर्गत भेद नीति में प्रवीण, यशधारियों में श्रेष्ठ स्थान रखने वाला, अति वीरता से युद्ध करने वाला, उन्नत मन वाला, बड़ा दानी, दुर्घपं तलवार को धारण करने वाला, शाह शाहबुद्दीन भी जिसका ध्यान रखता था ऐसा वह वीर, तेजस्वी, प्रतापी, अजय तथा दूसरों के दर्प को दलने वाला था ।

इष्पि बधु आचार । मीर उमराव जंपि जस ॥

एक पात्र साहाव । चित्ररेपा सु नाम तस ॥

रूप रंग रति अग । गान परमान विचप्पन ॥

वीन जान वाजान । आनि वत्तीमह लच्छन ॥

दस पंच वरष वाचा सुवच । सु प्रासाद साहाव अति ॥

आसिक्क ताम हुस्सेन हुआ । प्रीति परस्पर प्रान गति ॥ १४५ ॥

शब्दार्थ—जपि = कहना, साहाव = शाहबुद्दीन, वन = उमका, विच-प्पन = विचक्षण, सुप्रासाद = कृपा-पात्री, आसिक्क = आसिक ।

अनुवाद—उमके मुआचरण और बुद्धि को देखकर मीर और उमराव भी उसकी कीर्ति को कहते थे । शाहबुद्दीन के पास एक चित्र-रेखा नाम की वैद्या थी । उसका रूप-रंग और अग रवि सदृश्य थे तथा वह गान विद्या की बड़ी पंडिता थी । वह वीणा बजाना जानती थी और वत्तीस-लक्षणों से युक्त थी । वह पंद्रह वर्ष की आयु की थी तथा मधुर भाषिणी थी । वह शाहबुद्दीन की प्रति कृपा-पात्री थी । उमके प्रति हुस्सेन आसिक हुआ और दोनों में परस्पर प्रेम दो देह और एक प्राण तुल्य हो गया ।

एक सुदिन सुविहांन । साह हुस्सेन सुवुल्लिग ॥
 वे काफर आतस्स उत्तंग । दह दिसि नह डुल्लिग ॥
 पैसंगी पासग । लप्प लप्पां नलवाही ॥
 साईं सौं संग्राम । हक्कि हैवर गुरदाही ॥
 गर्दन गुराव महि महि मपां । पां पवास अण्णिय घाह ॥
 अन हल्ल नाल लभ्भय रवन । करौं तुच्छ तुम्मी वरह ॥ १४६ ॥

शब्दार्थ—सुविहान=प्रातः काल, सुवुल्लिग=बुलवा कर, नलवाही=अनलवाही, आग लगा देने वाली ।

अनुवाद—एक दिन प्रातः काल के समय साहबुद्दीन ने हुस्सैन को बुलाया और कहा कि नीच वही है जिसमें कामाग्नि प्रचण्ड हो और जो इसके वशीभूत होकर उन्मत्त हुआ-मा इधर-उधर घूमता फिरता है । मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि जो स्वामी की प्रेमिका से सम्बन्ध रखता है, वह प्रेमिका लाखों में आग लगा देती है । अतः तेरा भी स्वामी से युद्ध होगा और छोटे बड़ा कर तुझे घेर लिया जाएगा । यह बात बड़ी अरुढ़ वाले महिम सौं और खवास सौं के घर पर आकर हुस्सैन से कही और यह भी कहा कि यह रमणी जिसको तूने प्राप्त किया है निश्चय ही तुम्हारी अटल मृत्यु का रूप है । इतना ही नहीं यदि तू इस पर आसक्त रहा तो मैं तेरी श्रेष्ठ पदवी को भी नीचा कहेगा ।

सुनिअ धैन साहाव तव । प्रीत न छडी वाम ॥

कोपि कछौ सुरतान तव । हनौ कि छडी ग्राम ॥ १४७ ॥

शब्दार्थ—वाम=वामा, हनौ=माग जाणा, छडी ग्राम=ग्राम को छोड़ कर चला जा ।

अनुवाद—साहबुद्दीन के इन वचनों को हुस्सैन ने गुना पर उमने उस न्त्री से प्रेम नहीं छोड़ा । तब मुल्तान ने अधिष्ठित होकर कहा कि या तो वह मातृ-भूमि को छोड़ कर चला जाए अन्यथा माग जाएगा ।

मुनय चत्त हुस्सेन । सेन अण्णन साधारिय ॥

छंडि नयर निस्संक । मरु मननाह नसारिय ॥

निसा जाम इक आदि । लई सो पात्र परम गुन ॥
 तरुनि पुत्र परिवार । सज्जि सब साज सुअप्यन ॥
 परिगह सु अप्य अगौँ करिय । पांन पांन वधी सिलह ॥
 संचरथौ नैर नागौर इह । तजिय देस निज गठ ग्रह ॥ १४८ ॥

शब्दार्थ—साधारिय=तैयार कर लिया, नयर=नगर, सिलह=कवच,
 गठ=गाँठ ।

अनुवाद—जब उसने हुस्मैन की इस बात को सुना तो अपनी सेना को तैयार कर लिया और निर्भय होकर गजनी का परित्याग कर दिया । उस नासिरुद्दीन ने जो मन में शाहबुद्दीन के भय से शक्ति था अगली एक पहर रात बीत जाने पर उस परम गुणवती वैद्या, अपनी पत्नी तथा कुटुम्ब को लेकर, सब प्रकार के आयुधों से सुसज्जित होकर कवच धारण किया तथा अपने अग्र-रक्षकों तथा साथियों सहित आगे चला । उसने शाह के साथ शत्रुता की दृढ़ गाँठ बाँध कर, अपनी मातृभूमि को त्याग कर नागौर नगर में प्रवेश किया ।

लै परिगह हुस्सेन गय । दिसि प्रथिराज नरिंद ॥

संभरि वै सभारि कै । मनु आयौ ग्रह दद ॥ १४९ ॥

अनुवाद—मौर हुस्मैन अपने अग्ररक्षकों को साथ लिए हुए पृथ्वीराज की ओर आया । यह जानकर सभरवति ने समझ लिया कि मानो यह गृह में नाकात विघ्नस्वरूप होकर ही आया है ।

भोजन भण्ये चिविध वर । बहु आदर विधि कीन ॥

मान महातम रषि रज । राज उभय हय दीन ॥ १५० ॥

अनुवाद—विविध प्रकार के साने योग्य श्रेष्ठ व्यञ्जनों को पढ़ेवा कर उसका भली प्रकार से आदर सत्कार किया और उसे वीरों में विशेष मान कर राजा ने प्रेमपूर्वक दो घोड़े प्रदान किए ।

आपेटक चहुआन । पाम हुस्मेन संपत्तौ ॥

बार आड चहुआन । भाइ धन ताहि दियसौ ॥

नीति राव कुटवाल। तास ग्रह राज सु अप्पिय ॥
 वर कैथल हांसि हिंसार। राजपट्टो है थप्पिय ॥
 इह चरित देपि सब दूत तव। जाइ संपते साहि पर ॥
 चरवर चरित जुगिनि पुरह। कहिय वत्त में मुष्पधर ॥ १५१ ॥

शब्दार्थ—आपेटक=आखेट करते हुए, वार=द्वार, कुटवाल=कोत-
 वाल, दर=दरवार, थप्पिय=स्थापित किया।

अनुवाद—शिकार खेलते हुए चौहान राजा के समीप हुस्सेन पहुँच गया। चौहान राजा ने द्वार पर आकर उससे बड़े भाई-चारे का सा व्यवहार किया, राजा ने उसके साथ कोतवाल की नीति से आचरण किया। पृथ्वीराज ने अपने राज्य के कुछ भाग को उसके प्रति देकर उसे कृतार्थ किया। श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने उसे कैथल, हांसि, हिंसार आदि के राज्य को देकर बिठा दिया। जब इस प्रकार के व्यवहार को सब दूतों ने देखा तब वह शाहबुद्दीन के दरबार में पहुँचे और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज के आश्रय में हुस्सेन को जो वैभव प्राप्त हुआ उसको उन्होंने शाहबुद्दीन के सम्मुख अपने मुख से कह सुनाया।

संभरिय वत्त साहावदीन। उच्चरिय बैन अति कोप कीन ॥
 मुक्कलौं इत्त चहुआन पास। कढौ हुसैन जो जीव आस ॥ १५२ ॥

शब्दार्थ—कढौ=निकाल दो, जीव=प्राण, आस=आशा।

अनुवाद—यहाँ से छूट कर, चौहान के पास पहुँच कर हुमैन ने ऐश्वर्य प्राप्त किया। जब यह बात शाहबुद्दीन ने सुनी तब वह अति क्रोध में आकर बोला कि यह बात चौहान के पास पहुँचा दो कि यदि उसे (पृथ्वीराज को) अपने प्राणों का मोह है तो उसे (हुमैन को) अपने देश में निकाल दे।

बोलयौ पांन तातार तट्व। संजाव पांन उमराव सट्व ॥
 पुच्छी सु वत्त किय इत्त सार। थप्पी सु वत्त पुरमान वार ॥ १५३ ॥

शब्दार्थ—पान तानार=तातार खाँ, पुरमान=गुरमान।

अनुवाद—नव उसने तातार खाँ और सब श्रेष्ठ उमरावों को बुलाया और

उन्से सलाह ली । तब खुरसान ने (शाहबुद्दीन से मारी बात सुनकर) यह निष्कर्ष निकाला—

आरव्व सेप लीनौ बुझाइ । वैब्रद्ध ब्रद्ध बुद्धी सुनाइ ॥

बछै सुपेम सक लेहिं साहि । लज्जी अनंत आदव्व थाहि ॥ १५४ ॥

शब्दार्थ—सेप = शेख, वैब्रद्ध = वयोवृद्ध, बुद्धी = ज्ञान, लज्जी = प्रिया ।

अनुवाद—उसने अरब शेख को बुलाया जो कि आयु और ज्ञान में वयोवृद्ध समझा जाता था । सब उसको प्रेमपूर्वक चाहते तथा उससे सलाह लेते थे । उसकी प्रिया के प्रति भी लोगों का अनंत आदर भाव था ।

उच्चरथौ वैन साहाव भास । आरव्व जाहु चहुआन पास ॥

अप्यै जु पात्र हुस्सेन जाम । लै आउ सम्म हुसेन ताम ॥ १५५ ॥

शब्दार्थ—अप्यै जु पात्र = अपनी जो वंद्या, सम्म = साथ, ताम = उसको ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन स्पष्ट वाणी में बोला कि अरब तुम चौहान के पास जाओ और अपनी जो वंद्या हुस्सेन के अधिकार में है उसको हुस्सेन के साथ ले आओ ।

मुक्कों सुगुनह कीनों पसाव । मैं दीन पच्छ करि पिमा दाव ॥

छंडै न पात्र हुस्सेन अव्व । चहुआन मिलै सामंत सव्व ॥ १५६ ॥

शब्दार्थ—पच्छकरि = पक्ष करके, पिमा = क्षमा, अव्व = गर्व करके ।

अनुवाद—मैं हुस्सेन को अपने समान मान कर आदर पूर्वक छोड़ दूंगा । उसका पक्ष लेकर अब उस पर कृपा करके मैं उसको क्षमा प्रदान कर दूंगा । यदि हुस्सेन घमंड करे और उस वंद्या को भी न छोटे तब चौहान राजा तथा उसके समस्त सामंतों ने मेरे ये वचन कहना—

जपियौ वयन चहुआन माइ । कट्टौ हुसेन नागौर थाइ ॥

अज्जीज पांव तुम सच्च उच्च । लिप्यौ सु पत्र हम परम रुच ॥ १५७ ॥

शब्दार्थ—अज्जीज पाव = अजीज याँ, सच्च उच्च = नममूच बताओ, लिप्यौ = लिखो, रुच = रुचिकर ।

अनुवाद—चौहान के सम्मुख जाकर यह कहना कि नागौर से हुस्सैन को निकाल बाहर करे । अजीज खाँ तुम इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक बताओ और हमारी ओर से एक ऐसा पत्र लिखो जो हमे अतीव रुचिकर हो ।

कट्टौ हुसेन तुम देस अंत । वछौ जो पेम मानो सुमंत ॥
रण्या हुसेन जो असु परेस । चतुरंग सेन सज्जौ विसेस ॥ १५८ ॥

शब्दार्थ—मानो = मान लो, सुमत = सुपरामर्श ।

अनुवाद—तुम हुस्सैन को अपनी सीमा से निकाल दो । यदि हमारा प्रेम व्यवहार चाहते हो तो हमारा यह सद्परामर्श मान लो और यदि हुस्सैन को रखकर उसके प्राणों की रक्षा करने के इच्छुक हो तो हम चतुरगिणी सेना को सजाकर तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेंगे ।

भजौ सुनैर नागौर देस । जीवत वढि वधौ नरेस ॥
सामत सूर सब करौ अत । वधौ सुबंध सा तरुनि कत ॥ १५९ ॥

शब्दार्थ—सुनैर = सुन्दर नगर, जीवत = जीवित ।

अनुवाद—सुन्दर नागौर नगर को नष्ट कर देंगे तथा वहाँ के राजा को जीवित पकड़ कर कैद कर लेंगे, तुम्हारे समस्त वीरों और मामतों को मौत के घाट उतार देंगे । तुम्हारे देश के नर-नारियों, निवासियों आदि को बाँध कर मार डालेंगे ।

उच्चरि गुमान तन वत्त थूल । सपेप कहैं मानौ स मूल ॥
तुम जाउ सिध नागौर ठाम । मति करौ एक पिन घर विश्राम ॥ १६० ॥

शब्दार्थ—सपेप = सक्षेप, सिध = शीघ्र ।

अनुवाद—हमने स्पष्ट रूप से अभिमान युक्त मोटी-मोटी बातों का सार समझा दिया है अतः तुम बिना एक पल भी विश्राम किए नागौर नगर को जाओ और हमारा सदेन कहो ।

सै तीन दीन अमचार सध्य । आरुहन दीन नरयान रध्य ॥
सचरयो मेख आरव्य राह । दो पुष्प पत्त नागौर थाह ॥ १६१ ॥

शब्दार्थ—मै = सौ, पप्प = पक्ष ।

अनुवाद—शाह ने उसके साथ तीन सौ घुड़ सवार कर दिए तथा चढ़ने के लिए (सवारी के लिए) रथ दिए । शेरव आरख नागौर नगर के मार्ग पर चल दिया और नागौर नगर पहुँचने में उमे दो पक्ष से अधिक लग गए ।

गय आरव नागौर धर । मिल्यौ साह हुसेन ॥

भोजन भण्य सुभाव क्रिय । विवध प्रसन्निय वैन ॥ १६२ ॥

शब्दार्थ—भण्य = भक्ष, खिलाया ।

अनुवाद—अरव नागौर देश में पहुँचा और शाह हुसेन से मिला । उसने अरव को प्रेम से भोजन खिलाया तथा सद्भाव एवं प्रसन्नता के साथ वार्तालाप किया ।

कही वत्त हुसेन सम । जो कहि साह सहाय ॥

नह मनिय :सोमंत हिय । दिय आरख जवाय ॥ १६३ ॥

शब्दार्थ—सम = से ।

अनुवाद—फिर आरख शेख ने बादशाह शाहबुद्दीन का सदेश हुसैन शाह से कहा । हुसैन ने उसकी सलाह को अपने हृदय में नहीं माना तब अरव शेख ने शाह का घमकी वाला उत्तर दे दिया ।

गयो सेप आरख दर । लही प्रवर प्रथिराज ॥

बोलि मजूम मडिष महल । सामंतन सब साज ॥ १६४ ॥

शब्दार्थ—दर = द्वार ।

अनुवाद—तब शेख आरख पृथ्वीराज के द्वार पर पहुँचा और सब भेद मालूम किया । फिर अपने महल के अन्दर पहुँच कर सब सामन्तों को सजाने के लिए कहा ।

उठि गोरी दिन्ते बहुरि । गयो सु अदर साह ॥

बहुरि पांन मीरं बरा । अति चचल तुर ताह ॥ १६५ ॥

शब्दार्थ—तुर = आतुर, व्याकुल ।

अनुवाद—गौरी बादशाह ने अपने समस्त सामंतों को घर जाने के लिये विदाई दी और आप महल में चला गया। बड़े बड़े श्रेष्ठ वीर उमरावों के हृदय, जो उस समय सभा से लौटे थे व्यग्रता से चंचल हो उठे।

तपै साहि गोरी सवर। चित्त सालै चहुआन ॥

वैरोचन की साष ज्यों। कीटी भ्रग प्रमान ॥ १६६ ॥

शब्दार्थ—साष = साख, वश।

अनुवाद—सरल है।

जगगत निसि भूपत सुरतानह। घरी सत्त रहि सेप प्रमानह ॥

जगि आयस द्विय दीन निसानह। चिता साहि चढी चहुआनह ॥ १६७ ॥

शब्दार्थ—आयस = आज्ञा, चिता = चिता।

अनुवाद—चौहान राजा के कारण शाहबुद्दीन अति चिंतित रहता था, रात भर जागते हुए वकता रहता था, और प्रातः काल में सात घड़ी शेष रहने पर उठ कर नगाड़े बजाने की आज्ञा देता था।

भए सुर तीन धुनक निसान। चढ्यो सजि अश्व सिल्है सुरतान ॥

चढे सब पाँन सु उम्मर मीर। सजे सहनाड बजे रस वीर ॥ १६८ ॥

शब्दार्थ—मुर = स्वर।

अनुवाद—सुल्तान ने तीन बार जोर से नगाड़े पर चोट पहुँचाई जिससे भयानक शब्द उत्पन्न हुआ। तदुपरांत वह कवच धारण कर घोंटे पर नवार हुआ। शाहबुद्दीन के समस्त खान और मीर उमरावों ने भी युद्ध के लिए अभियान किया तथा वीर रम ने परिपूर्ण सहनाइया बजने लगीं।

बजे सब बाज भयानक भाइ। चितैं हिय बुद्धि जिने जन नाइ ॥

चढ्यो सब मज्जिय मेन गरिष्ट। परी दम दिग्ग सुधूधरि दिष्ट ॥ १६९ ॥

शब्दार्थ—भाइ = भाव, जन-नाइ = गजा, गरिष्ट = बटा।

अनुवाद—वीर रम के बाजे भयानक स्वर से बजे जिससे राजा के हृदय में नाना प्रकार के विचार आने लगे। शाह के बड़े बड़े सेना-नायकों ने

सुसज्जित, होकर अभियान किया । उनके चलने से दसो दिशाओं में इतनी धूल उड़ी कि दृष्टि धूमिल हो गई ।

सवद सियांन सुसेन कपोत । सनमुष साहि दिप्यौ दल-दोत ॥
भयो दिसि वामिय कग्ग करार । रुक्क्यौ दिवि धोमय धूम गभार ॥१७०॥

शब्दार्थ—दल-दोत = यमदूत, वामिय = मार्ग ।

अनुवाद—शस्त्रास्त्रों ने सुसज्जित गाह की सुदूर सेना के चलने पर मियान नामक अस्त्र की ध्वनि उद्भूत होती थी । साथ ही साथ कवूतर भी सूचना प्राप्त करने के लिए छोड़े गए । सामने से आता हुआ शाहबुद्दीन का दल ऐसा प्रतीत हुआ मानो यमदूतों का दल चला आ रहा हो । सेना के चलने से जो धूल उड़ी उसके कारण सब दिशाएँ एवं मार्ग कौनों के समान काले रंग की हो गई ।

सनमुष देपिय जवुक सेन । विरो मिलि चंपहि मग्गहि तेन ॥
क्रम तस उप्पर गिद्ध असंघ । चवै सुर रुद्र पसारिय पप ॥१७१॥

शब्दार्थ—जवुक = गीदड़, अमप = असत्य ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन की सेना ने सामने गीदड़ों का झुण्ड देखा जिन्होंने विरोधी मार्ग से आकर उनका रास्ता काट दिया । उन मैनिकों के ऊपर अगणित गिद्ध भड़का रहे थे और (गिद्धों के) फैले हुए ख इस प्रकार प्रतीत होने से मानो साक्षात् रुद्र देवता क्रोध कर रहे हों ।

गही सुरतान सु आरव वग्ग । रही दिन आज सगु न न जग्ग ॥
रहैं कुहु अज्ज ततार सुदिन्न । गही चढ़ि चलहु मन्नि सगुन्न ॥१७२॥

शब्दार्थ—वग्ग = लगाम ।

अनुवाद—अरब जाति के अश्व की लगाम मुन्तान ने पकड़ी और कहा कि आज हमारे लिए अशुभ शकुन हो गया है अतः आज वहीं ठहर गए तथा शुभ शकुन देखकर तातार जाति के घोड़ों के साथ चमना चाहिए ।

कहै सुरतान अहो तुम क्रूर । भयें भय भ्रित्यु सु'मंयहु नूर ॥
 कहा बल जुद्ध कहौ प्रथिराज । कितौ बल सामंत जुद्धिह साज ॥१७३॥

शब्दार्थ—नूर = दीप्ति, क्रूर = खगव ।

अनुवाद—नव गुल्तान ने कहा कि नुम लोग बड़े खराब हो और मृत्यु के भय में तेजहीन हो रहे हो । भला पृथ्वीराज किम बूने पर हम से युद्ध करेगा, उसके पास कितनी सेना है और कितना युद्ध का सामान है ।

हनौ रन मूर जिके चहुआन । गहौं जुधराज गु पंडिय ग्रान ॥
 कहा डर काफर दापहु मुभूम । कहा भर आवध आगारि जुभूम ॥१७४॥

शब्दार्थ—जिके = जितने, आगारि = आगार, भण्डार ।

अनुवाद—(शाहबुद्दीन ने कहा) अरे नीचों ! मुझे हिंदुओं का क्या भय दिवाने हो, मेरे पास युद्ध में जूझने वाले वीरों की खान है अतः चौहान के जितने वीर हैं उनकी नमर में माहेंगा तथा युद्ध में राजा को पकड़ कर उनकी प्राणों में रहित कर दूंगा ।

नमनि चमकि चह्यौ सुरतान । टमकिय गज्जिय नह निसान ॥
 जलध्वल होय थल जल भार । अमग्गह मग्ग चलै गहि तार ॥१७५॥

शब्दार्थ—अमग्गह = अमार्ग ।

अनुवाद—गुल्तान उछल कर घोड़े पर चढ़ गया और बड़े जोर की ध्वनि करके लगाटा बजवाया । बड़े जोर से चटार्ट लटने के लिए मार्ग-धुमार्ग की चिंता न करता हुआ अपने अनुयायियों के साथ चल पड़ा ।

मिल्यौ डक साहन लप्प ममु द । समुभूमिन कन भयो गुर मु द ॥
 चल्यौ सुरतान मिलान मिलान । बटी अति चित दुनी चहुआन ॥१७६॥

शब्दार्थ—मिलान-मिलान = पड़ाव-पड़ाव, दुनी-दुगनी ।

अनुवाद—शाह को चलने चलते एक दरिया दिखाई पड़ा, जिसे देख कर सेना की गति मद पड़ गई । गुल्तान पड़ाव पर पड़ाव न करना हुआ चल पड़ा जिससे चौहान के मन में चिन्ता द्विगुणित हो गई ।

गयौ साहि चहुआनं घर । दिए मिलान मिलान ॥

गए सुचर नागौर पुर । कही पवरि सुरतान ॥ १७७ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन पडाव डालता हुआ चौहान के नगर की ओर चला और उसके आने की सूचना दूतों ने नागौर जाकर पृथ्वीराज को दी ।

देखि चरित नृप साह चर । गए पास सुरतान ॥

कहैं सेन संमुप रजै । चढि आयौ चहुआनं ॥ १७८ ॥

अनुवाद—पृथ्वीराज की चढाई का हाल देख कर शाहबुद्दीन के दूतों ने मुल्तान के पास जाकर कहा कि चौहान ने अपनी सेना सामना करने के लिए सजाई है और वह चढाई करने ही वाला है ।

सुनि चरित साहाव चर । दिय नरघोष निशान ॥

चह्यौ सेन सज्जे सिलह । करिव फोज सुरतान ॥ १७९ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन ने दूतों के द्वारा पृथ्वीराज के चढ आने का वृत्तांत सुनकर नगाड़े पर भयानक आवाज करवाई । स्वयं सैनिक कवच धारण कर सेना को आक्रमण करने के लिए शस्त्रास्त्र द्वारा सुसज्जित किया ।

चह्यौ सुरतान सुसज्जिय फोज । वजे वर वज्जन धीर असोज ॥

भयौ गज घुंमर घट निघोर । मनौ भुकि कन्न भयौ मुर रोर ॥ १८० ॥

अनुवाद—मुल्तान ने सेना सजाकर आक्रमण किया तथा अजेय वीरों द्वारा ध्रेष्ठ वाजे बजाए गए । हाथियों के घुमड़ कर आने ने कानों को घटियों का भयानक शब्द सुनाई दिया ।

गजै गज मह मनौ घन भद् । चिकार फिकार भए मुर रुद्ध ॥

तुरंग महीस कडक्क लगांस । खरक्किच पप्पर तोन मुतानं ॥ १८१ ॥

शब्दार्थ—गजै = गर्जते हैं, मह = मदमस्त, महीस = हिनहिनाना, पप्पर = झूल, तोन = तूणीर ।

अनुवाद—मदमस्त हाथी गर्जने लगे और उनकी चिंघाड़ का विकराल शब्द ऐसा प्रतीत हुआ मानो भादों के वादन गर्जना कर रहे हों । कवच,

तूणीर तथा भूल को धारण किए हुए घोड़े हिनहिनाने लगे तथा लगाम को चवाने लगे ।

चमकंत तेज सनाह सनाह । करैं धर पद्धर राह विराह ॥
भलक्कत टोप सुटोप उत्तग । मनौ रज जोति उद्योत विहग ॥ १८२ ॥

शब्दार्थ—उत्तग = ऊँचे, उद्योत = उदित हुए ।

अनुवाद—उनके कवच तेज के कारण चमचमा रहे थे और उनके चलने से घरती के मार्ग कुमार्ग पर पगडण्डी बन जाती थी । उनके ऊँचे-ऊँचे टोप झनझनाते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो उदय हुए सूर्य की ज्योति प्रकाशित हो रही हो ।

दमकत तेज कमान कमान । चित चित मीर रही मडमान ॥
भले भर सांडय ध्रम सगत्ति । लर्पे धर जीयन जत्तिन गत्ति ॥ १८३ ॥

अनुवाद—सरल है ।

नमैं निज सांडय पंच वपत्त । सिपारह तीस पढै दिन रत्त ॥
नमैं निज सेप धरम सरंम । क्रमैं रह रीति कुरान करम ॥ १८४ ॥

शब्दार्थ—सांडय = स्वामी को, सरम = लज्जा ।

अनुवाद—(वे मैनिक) अपने स्वामी शाहबुद्दीन को पाच बार अभिवादन करते थे तथा ईदवर का स्मरण तीसो दिन अर्थात् पूरे महिने पाच बार नमाज पढ़कर करते थे । वे अपने शेर को धर्मानुकूल और लज्जानुकूल नमस्कार करते थे । कुरान में निर्दिष्ट कर्मों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते थे ।

टिडवर वाचरु काछह मीर । तरु निय ण्क रते वर वीर ॥
सवद्दय वेध करैं तम तांह । भमतिय पपि हनैं छित छांह ॥ १८५ ॥

शब्दार्थ—सवद्दय = शब्द, भमतिय = भ्रमण करते हुए ।

अनुवाद—मीर नोग दृढ़ कवच शरीर पर धारण करते थे । श्रेष्ठ-श्रेष्ठ घोड़ा तरगियों के साथ केलि-श्रीडा में रत थे । वे अंधेरे में शब्दभेदी वाण

चला सकते थे और (आकाश में) घूमते हुए पक्षियों की छाया को देख कर (उन्हें) मारने में दक्ष थे ।

धरै इक एक अनेक सुवान । मलक्कत मु ड तवल्लह मान ॥
धरै धर नाहिय स्याहिय सीस । सिरक्कट्टि वंवर धुंमर दीस ॥ १८६ ॥

शब्दार्थ—तवल्लह=तबला, मान=ममान ।

अनुवाद—एक एक अर्थात् प्रत्येक के पास विविध प्रकार के बाण थे; उनके तबले के समान बड़े-बड़े सिर चमक रहे थे और अपने सिरों पर रंग-विरंगे नाफे बांधे हुए थे ।

अनेक सुवान अनेकह रग । चढे सब मीरह सेन अभग ॥
अनेक सुवान अनेकय व्रन । समुम्किन्नहीय समुम्किन्न क्रन ॥ १८७ ॥

अनुवाद—उनके प्रमुख बाण विभिन्न रंगों के थे तथा सब मीर नाना प्रकार के घोड़ों पर चढ़े हुए थे ।

पय भर अगग अनेक सुभार । अनेक सुजाति अनेक सुतार ॥
सिरं किय मुंडिय मु ड सुअद्ध । जुवट्टिय उट्टिय जानि अनद्ध ॥ १८८ ॥

अनुवाद—सरल है ।

करं तिय मड्डिय रग अनेक । फुरक्कहि मंपहि मपह तेग ॥
चले धर वान सुसद्धिय दिठ्ठ । अगे हथ नारि अभूल गरिठ्ठ ॥ १८९ ॥

शब्दार्थ—तेग=तलवार ।

अनुवाद—उन्होंने अनेक रंगों की झडियाँ बांध रखी थी, उनकी तल-वारों की दीप्ति फड़कते समय झलकती थी । वे पूरी तरह से तैयार होकर बाण तथा हथ-गोले छोड़ रहे थे । वह नाच कर ऐसा निशाना मारते थे कि वह नक्षत्र पर ही बैठता था ।

अगं किय मद सरक्क सुभार । मनौ पय चल्लत पव्वत चार ॥
दलै सिर ढाल अनेक मुरग । फरै फरहारि उभारिय अग ॥ १९० ॥

शब्दार्थ—पय=जल ।

अनुवाद—आगे वीरोन्मत्त योधा चल रहे थे मानो पर्वत से जल की धारा क्षिप्र गति से नीचे की ओर आ रही हो । अनेक सुन्दर रंगों की ढालें उनके सिर पर विद्यमान थी तथा अंगों को उघाडकर अर्थात् स्फूर्ति से चलते समय फरसे चमचमा रहे थे ।

वरनह भंडय मडय जूथ । मनो षट रिच्छि अनंगूह रूव ॥
भई पुर डंवर अवर रेन । जल थल पद्धरि सक्रमि सेन ॥ १६१ ॥

शब्दार्थ—वरनह = वरुणों के, जूथ = यूथ, भुण्ड, रूव = रूह ।

अनुवाद—वहाँ पर एकत्रित नाना वर्णों के युवकों के भुण्ड इस प्रकार प्रतीत होते थे जैसे कामदेव के रूप में छहो ऋतुएँ शोभित हो । रंग विरंगे सध्याकाल के आने पर मेना जल-स्थल सब मार्गों पर फैल गई ।

जगि मंत्री कैमास महा भर । गठिय चित्त चरित्त कहिय वर ॥
जगिगय सथ्य सज्ज निस सेन । गयो राज यह सज्जि द्रगेन ॥ १६२ ॥

अनुवाद—महावीर कैमास मोकर जागे तथा दूत ने जो वृत्तांत कहा उसे मन में समझा । उन्होंने रात्रि में ही जाग कर अपनी सेना को तैयार किया तथा पृथ्वीराज के पास किले पर चले गए ।

चरित लप्प साहाव चर । गए पास सुरतान ॥
सजी मेन सामत पति । आयो जोजन थान ॥ १६३ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन के दूतों ने यह देख कर सुल्तान के पास खबर पहुँचाई कि माभर नरेश (पृथ्वीराज) युद्ध के लिए तैयार है और वह केवल एक योजन दूर रह गया है ।

मुनि चरित्त साहाव तास चर । योलि भीर उमराव महा भर ॥
दिय निरधार धाव नीसान । चलयो सेन सज्जै सव्वन ॥ १६४ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन ने अपने दूतों से यह वृत्तांत सुनकर बड़े योधा, भीर-उमराव आदि को बुलाकर एकत्रित किया । नगाड़े पर चोट लगवाई तथा समस्त मुनज्जित मेना को लेकर नल पड़ा ।

वाजित्त वीर अनेक सुवज्जे । धर पडिहाय सुगोमइ गज्जे ॥
 उग्यौ सूर चढ्यौ सुरतानं । बडिज निहाव नाल गिरि वान ॥ १६५ ॥

अनुवाद—नाना प्रकार के बाजे बजने लगे तथा सेना के चलने से ऐसी आवाज हुई जैसे आकाश गिर पड़ा हो । जिस समय मुल्तान ने अभियान किया उस समय सूर्य लुप्त हो गया तथा (मुल्तान की सेना के) नगाड़े बजने लगे और उन्होंने नीलगिरि पर्वत से बाण छोड़े ।

फौज सुपंच सजी साहाव । उलट्यौ मेन समुद्रह आवं ॥
 दच्छिन दिसा सज्जि तत्तारं । दिसि वाई पुरसान सुधारं ॥ १६६ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन ने अपनी सेना को अनेक प्रकार से तैयार किया तथा जब वह उनके (सेना के) साथ चलने लगा । तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो समुद्र का प्रवाह उलट पड़ा हो । कवि सेना का चित्र खींचते हुए कहता है कि उस सेना के दक्षिण दिशा में तातार साँ तथा बाई ओर खुर्रसान तैयार पड़ा था ।

हाजिय राजिय गाजिय पानं । सनमुप मेन सजी सुरतान ॥
 मीर जमांस पानं कमानं । मह्यति मीर पुदिठ सजि तामं ॥ १६७ ॥

अनुवाद—कवि सेना का चित्र खींचता हुआ पुनः कहता है कि एक ओर खान लोगों के हाथी घोड़े गोभित हो रहे थे तथा दूसरी ओर अर्घान् मुल्तान के नामने सेना मजी हुई खड़ी थी । मीरादि अन्य-अन्यों से मुन्जिजत उन प्रकार गडे थे मानो साक्षात् यम हो तथा गोर बगल महाबत पृष्ठभाग में तैयार गडे थे ।

पान मरुस्तम रुस्तम पान । मद्धि फौज रज्जे सुरतानं ॥
 सहते वीस वीस मजि फौज । तुवा पच रचें अहहौज ॥ १६८ ॥

अनुवाद—मरुस्तम पाँ तथा रुस्तम पाँ की फौज के बीच में मुल्तान गड़ा था । बीस-बीस सरदारों की टुकड़ी के मन्धरा में सेना यदि गोभित दे गयी थी । महहौज सरदार ने पाच-पाच की सेना की टुकड़ी को वृन्दावार रूप में खड़ा किया ।

चिहुपष्पां गज घूमहि डमर । हथ नारि गिरवान असंबर ॥
रिन रन तूर घोर नीसानं । भेरी शृंग गरुड थन थान ॥ १६६ ॥

शब्दार्थ—चिहुपष्पा = चारो ओर ।

अनुवाद—हथगोले, भाले, तीर-रुमान आदि धारण किए हुए हाथी चारो ओर चिघाड़ रहे थे । नगाड़ो से भयकर ध्वनि प्रस्फुटित हो रही थी तथा भेरी, शृङ्ग और गरुड आदि वाद्य भी अपने अपने स्थान पर स्थापित थे ।

नफफेरी त्रिय विध सुर डंडं । जोमप पट्ट वजे धन दड ॥
आवत भुमभ डक्क ठहक्किय । है वर हीस टरक्क गहक्किय ॥ २०० ॥

अनुवाद—नफफेरी बाजा तीन प्रकार के स्वरों से बज रहा था, जोमख-पट्ट नामक वाद्य पीटा जा रहा था, हाथियों का भुण्ड भूमता और चिघाड़ता हुआ चला आ रहा था तथा श्रेष्ठ घोड़े हिनहिनाते हुए चले आ रहे थे ।

गज चिक्कार फिक्कार सवहं । तंदुल तवल मृदग रवहं ॥
जंगी वीर गुडीर अनेकं । वाजित्र अनेक गने को वेग ॥ २०१ ॥

शब्दार्थ—तंदुल = चावल (परन्तु यहाँ पर आटा) ।

अनुवाद—हाथियों के चिघाड़ने का स्वर ऐसा प्रतीत होता था जैसे आटा लगाने के उपरान्त तवले और मृदग से सुन्दर गद्द निकल रहा हो । महान् युद्ध करने वाले अमरुथ वीर तथा विभिन्न प्रकार के बाजे भी वहाँ अगणित सख्या में थे ।

फौज पंच साजी साहावं । मीर अनेक गने को नाव ॥
देस देस मिलि भाप अनतं । तवियन नाम अनेक गनतं ॥ २०२ ॥

शब्दार्थ—तवीयन = तावीज ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन अपनी मेना को पांच प्रकार में मजा कर चला । उस सेना में देश विदेश से अनेक मीर-उमराव आ कर एतथित हुए । वे विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और तावीज पढ़ने हुए थे । इन सब की नग्या इनकी थी कि उनकी गणना नहीं हो सकती ।

फौज पच सजि चलयौ अधिक जुसाह । गज्जैँ धरनि गैँन पुर गाह ॥
सारुंडे सज्जयो दिसि वामं । पद्धर सद्धर उत्तिम ठाम ॥२०३॥

शब्दार्थ—गैँन = गगन, पुर = नगर, गाह = गाव ।

अनुवाद—गाहबुद्दीन जब अपनी पाच प्रकार की सेना सजाकर चलता था तब इतनी धूल उड़ती थी कि उसमें गगन, नगर एवं गाव भर जाते थे । सारुण्ड नामक सरदार आवश्यक सामग्री तैयार करके उत्तम स्थान पर मोर्चा बाँचे तैयार खड़ा था ।

उत्तिम पथर पुठिठ जल । तषी जीय सुथान ॥

सारुंडो दिसि वामं दै । सजि ठाढौ सुरतान ॥ २०४ ॥

अनुवाद—सरल है ।

उड्डि रेन डधर अमर । दिप्यौ सेन चहुआन ॥

सुनिग क्रंन्त वाजित्र ब्रह्म । सजे सीस असमान ॥ २०५ ॥

अनुवाद—सरल है ।

तृतीय खण्ड

(पद्मावती समय सटीक)

पद्मावती समय

पूरुव दिसि गढ़ गढ़नपति, समुद्र-सिपर अति द्रुग ।

तरे सु विजय सुर-राजपति, जादू कुलह अभग ॥ १ ॥

शब्दार्थ—समुद्र-सिपर=समुद्र शिखर (दुर्ग का नाम), द्रुग=दुर्ग, किला, सुरराज=इन्द्र, जादू=यादव, कुलह=कुल, अभग=अभग्न, अविच्छिन्न ।

अनुवाद—पूर्व दिशा में समुद्र शिखर नामक अत्यन्त दुर्गम दुर्ग है तथा सब गढ़ों में श्रेष्ठ भी है । यादवों की अटूट परंपरा में उत्पन्न होने वाले राजा विजयपाल उस दुर्ग के स्वामी हैं ।

टिप्पणी—१ प्रस्तुत पद में कवि ने दूहा छंद का प्रयोग किया है जो आधुनिक दोहा छंद का ही पूर्व रूप है ।

२ समुद्र सिपर में छेकानुप्रास की मुदर छटा है ।

३ इतना ही नहीं द्रुग, अभग आदि अपभ्रंश शब्दों के प्रयोग के कारण इसकी (रासो पुस्तक की) प्राचीनता का भी अवबोध होता है ।

हसम हयगय देस अति, पति सायर अज्जाद ।

प्रवल भूप मेघहिं सकल, धुनि निसॉन बहु साद ॥ २ ॥

शब्दार्थ—हसम=घन-सम्पदा, वैभव, हयगय=हाथी-घोड़े, सायर=सागर, अज्जाद=मर्यादा, नीमा, नाद=शब्द ।

अनुवाद—वह राजा विजयपाल सागर पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी है और उसके वैभव, घोड़ों हाथियों व राज्यों का घंटा नहीं है । समस्त नगर उसकी सेवा करते हैं तथा उनके नगाटों का शब्द बहुत

टिप्पणी—१. प्रस्तुत पद में भी कवि ने ढूहा छंद का प्रयोग किया है।

२. सेवर्हि तथा सकल शब्दों में छेकानुप्रास की छटा भी दर्शनीय है।

३. भाषा की दृष्टि से ह्रस्व गवद अरवी के ह्रस्वत शब्द का भ्रष्ट रूप है तथा मायर और अज्जाद शब्द प्राकृत से सवध रखते हैं।

४. मर्यादा का अज्जाद हो जाना अपभ्रंश की उस प्रवृत्ति का द्योतक है जिसके अनुसार धर्म का धम्म और क्रम का क्रम्म हो जाता है।

धुनि निसॉन बहुसाद नाद सुर वजत पच दिन।

दस हजार हय-चढ़त हेम-नग-जटत साज तिन ॥

गजअसप गजपतिय मुहर सेना तिय संपह।

इक नायक, कर धरी पिताक, धर भर रज रण्ह ॥

दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरग उम्मर उमर।

भंडार लखिय अगनित पदम, सो पदमसेन कूंवर सुघर ॥३॥

शब्दार्थ—सुरपच=पचम स्वर, अथवा मृदंग, तंत्री, मुरली, ताल, दुदुभी आदि वाजे, मुहर=सेना, नायक=मण्डलाधिपति, धर भर=सारी पृथ्वी भर, उम्मर उमर=(अम्बर-उम्बर) रथ के ऊपर छात्राकार आच्छादन जिसे दल बादल भी कहते हैं।

अनुवाद—उस राजा के नगारों की ध्वनि बहुत तेज है तथा सदा ही पचम स्वर रहता है अथवा मृदंग, तंत्री, मुरली, ताल और दुदुभी आदि पांच वाजे वहाँ सदा वजते रहते हैं। उसके दस सहस्र अश्वारोही ऐसे घोड़ों पर चढ़ते हैं जिनके साज स्वर्ण रत्नों से जड़े हुए हैं। उसकी सेना में असह्य श्रेष्ठ हाथी हैं तथा उसकी सेना की सख्या तीन सप्त है। हाथ में धनुष ले कर वह अकेला उन सेना का नेतृत्व करता है और भूमि पर शासन करता है। समान रूप-गुण सम्पन्न उसके दस पुत्र और पुत्री हैं। उसके रथों के दलबादल (छाजन) सुंदर रंगों के हैं। उसके कोष में अगणित पद्मों की मय्या में धन है तथा चतुर और मुन्दर पद्मसेन कूंवर उसकी रानी है।

टिप्पणी—१ प्रस्तुत पद को कवि ने कवित्त कह कर पुकारा है । इस छंद को आजकल हम छप्पय कहते हैं ।

२. प्रस्तुत पद में उदात्त अलंकार है ।

पद्मसेन कुंवर सुंघर तां घर नारि सुंजान ।
ता उर इक पुत्री प्रकट मनहुँ कला ससभान ॥४॥

शब्दार्थ—उर=कुक्षि, ससभान=चंद्रमा ।

अनुवाद—उस राजा के घर में कुमारी पद्मसेन नामक सुंदर और चतुर रानी है । उसके गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया जो चंद्रमा की कला के समान मनोहर थी ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

मनहुँ कला ससभान कला सोलह सौ वन्निय ।

वाल वैस, ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय ॥

विगसि-कमल-स्निग्ध, भ्रम, वेनु, खजन, स्निग्ध हृदय ।

हीर, कीर, अरु विंव, मोति नप सिप अहिघुद्विय ॥

(पदमिनिय रूप पदमावतिय मनहुँ काम-कामिनि रचिय ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—वन्निय=वनी थी, वैस=वयस, अवस्था, पिन्निय=पीया,

स्निग्ध=सूक, माला, वेनु=वेणु, वशी, कीर=तोता, अहिघुद्विय=अभिवदित, रचा, छप्पति=छिपाती है; गयद=गजेन्द्र, श्रेष्ठ हाथी, हरि=निह, विह=विधि, ब्रह्मा, सन=साक्षा, सचिय=सचित की, काम-कामिनी=कानदेव की स्त्री रति ।

अनुवाद—राजकुमारी पद्मावती ऐसी सुंदर थी मानो चांद की एक कन्या हो और कन्या भी ऐसी जो चांद की पूरी सोलह कलाओं से बनी हुई हो । अभी उसकी बाल्यावस्था ही है किन्तु ऐसा लगता है मानो चंद्रमा ने उसी के पास से अमृत रस पीया हो । उसने अपने मुख, कंठ, चरण, आदि की गोभा से लिपे हुए कमल को, केशों से भवरो को, मधुर वचनों से वनरी को और नेत्रों की सुंदरता, चंचलता से गजगट अभियो को तथा उनकी विमलता ने

हिरण्यो को लज्जित कर दिया है। उसके चमचमाते अंग हीरो से, नाक तोते की नासिका सी होठ बिबा फल से और दात मोतियों में हैं। इस प्रकार एही से चोटी तक उसके समस्त अंग उत्कृष्टतम पदार्थों से रचित हैं। इतना ही नहीं अपनी चाल से वह हाथी, सिंह और हम को भी लज्जित करती है। ब्रह्मा ने मानो माचा बना कर उसके अंगों का निर्माण (संचयन) किया है। उस पद्मावती का रूप पद्मिनी नायिका के समान है मानो विधाता ने दूसरी रति की रचना की हो।

टिप्पणी—१. उत्प्रेक्षा, अन्योन्य, ललितोपमा अलंकारों की ससृष्टि है।

२ हीर, कीर, आदि केवल उपमानों का कथन होने के कारण अतिशयोक्ति अलंकार है।

मनहूँ काम-कामिनी रचिय रचिय रूप की रास।

पसु पछी सब मोहिनी, सुर, नर, मुनियर पास ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—रास (राशि) = निधि, मुनियर = मुनिवर, पास (पाज) = जान, फदा।

अनुवाद—उसको (पद्मावती) को देखकर ऐसा लगता है मानो समस्त रूप मोन्दर्य की राशि उस पद्मावती के रूप में ब्रह्मा ने रति की ही रचना की हो। पशु, पक्षी, सुर, नर, मुनिवर आदि सभी उसके मोन्दर्य-भास में फस जाते हैं।

सामुद्रिक लच्छन सकल, चौमठि कला मुजान।

जानि चतुर्दस अङ्ग ^{छट्}मम्, रति बसन्त परमान ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सामुद्रिक = हस्तरेखा आदि देवकार शुभाशुभ बताने की विद्या, परमान = नमान।

अनुवाद—वह सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित समस्त मुलक्षणों से युक्त थी और चौमठ कलाओं में भी पारंगत थी। वह चौदह विद्याओं तथा वेद के छहों अंगों को जानकार थी। मोन्दर्य में रति तथा जीवन-विकास में वसन के समान थी। अर्थात् वह वसन में अधिक शोभित होने वाली रति के समान थी।

टिप्पणी—चौदह विद्याओं का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है—

पुराणन्याय मीमांसाः धर्मशास्त्रांग मिश्रिताः ।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः ॥

सपियन संग खेलत फिरत महलनि वग निवास ।

कीर इक्क दिप्पिय नयन तव मन भयो हुलास ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—दिप्पिय = देखा, हुलास = उल्लास ।

अनुवाद—एक दिन जब वह (पद्मावती) महलों के वाग में अपनी महलियों के साथ खेल रही थी तब अपने नेत्रों से उसने एक तोता देखा । तोते को देख कर उसके मन में बड़ा हर्ष हुआ ।

टिप्पणी—‘कीर इक्क दिप्पिय नयन’ की भाषा में प्राचीनता की झलक मिलती है । ‘इक्क दिप्पिय’ प्रयोग डिंगल भाषा के हैं । ‘मन अति भयो हुलास’ में भाषा का रूप अपेक्षकृत आधुनिक है । यह पिंगल या सरल ब्रज-भाषा का रूप है ।

मन अति भयो हुलास, विगसि जनु कोक किरन-रवि ।

अरुन अधर तिय सधर, विवफल जानि कीर छवि ॥

यह चाहत चप चक्रित, उह जु तक्किय भरपि भर ।

चचु चहुटिय लोभ, लियो तव गहिन अप्प कर ॥

हरपत अनठ मन मह हुलस, लै जु महल भीतर गई ।

पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मेंह रण्यत भई ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—कोक = कोकनद, कमल, कोक = चक्का, अरुन = लाल, अधर = मोठ, गधर = वह धारण करती है, चप = चपु, नेत्र, चक्रित = चक्रित, तक्किय भरपि भर = देव कर तुरत भपटा, चच चहुटिय = चीन जाता दी, गहिन = गृहीत, पकाटा, अप्प = अपने, महि = मध्य = में, नग = रत्न, रण्यत भई = रखा ।

अनुवाद—तोते को देख कर पद्मावती का मन ऐसे आनंदित हुए की फिरलों से लाल कमल वा चक्के का हृदय-कमल मिल

उस स्त्री (पद्मावती) के अघर लाल वर्ण के थे जिससे तोते को विवफल का भ्रम हो गया । यह पद्मावती चकित नेत्रों से उस तोते को देखने लगी, और उसने भी पद्मावती को देखा तथा विवफल के लालच से झपट कर चोच चला दी । पद्मावती ने भी उसे तत्क्षण अपने हाथ में पकड़ लिया और प्रसन्न होती हुई उसे महल के भीतर ले गई, वहाँ मणि-रत्नों से जड़े हुए एक सुन्दर पिंजरे में उसे रख दिया ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में उत्प्रेक्षा तथा भ्रांति अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

तिही महल रण्यत भइय गइय खेल सब भुल्ल ॥

चित्त चहुँदृयौ कीर सों राम पढ़ावत फुल्ल ॥ १० ॥

शब्दार्थ—चहुँदृयो = लग गया, फुल्ल = हर्ष पूर्वक ।

अनुवाद—पद्मावती ने उसे महल में रख लिया । उस तोते से उसका मन ऐसा हिलमिल गया कि वह खेल कूद भी भूल गई तथा प्रफुल्लित होकर उसे राम-राम पढ़ाने लगी ।

टिप्पणी—चित्त चहुँदृयो में छेकानुप्रास अलंकार है ।

कीर कु वरि तन निरपि दिपि, नप सिप लौं यह रूप ।

करता करी बनाय कै, यह पद्मिनी सरूप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—तन = शरीर ।

अनुवाद—तोता भी राजकुमारी की ओर देख कर तथा एही से चोटी तक उसके सब अंगों के अनीकिक मोन्दर्य का अवलोकन कर सोचने लगता कि विधाता ने इसे बहुत यत्नपूर्वक पद्मिनी नारी के समान सुन्दर बनाया है ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में कीर व कुवरि में छेकानुप्रास अलंकार है ।

कुटिल केम मुदेस पौह परिचियत पिक्क सड ।

कमल-गध, वय-संध, द्दमगति चलत मंद मंद ॥

सेत वस्त्र सोई मरीर नप स्वाति-नुन्द जम ।

भ्रमर भवहिं भुल्लहिं मुभाव मकरंद वाम रस ॥

नयन निरपि सुप पाय सुक यह सुदिव्य मूरति रचिय ।

उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—कुटिल = कुटिल, घुघराले, सुदेस = सुन्दर, पौह = पुहे हुए, गुये हुए, परिचियत = परिचित होते हैं, दिखाई देते हैं, पिक्क सद = पिक शब्द, कोयल जैमा स्वर, रचियत = रचे हैं, सेत = श्वेत, सद् = श्रेष्ठ, वय-मघ = शैशव और यौवन का मिलन काल ।

अनुवाद—इसके (पद्मावती) घुघराले वाल, सुन्दर तथा पुष्पो से गूथे हुए हैं । कण्ठ-स्वर कोयल सा है । शरीर मे कमल की गंध आती है । इसके शरीर में कौमार्य तथा यौवन का मिलन सा हो रहा है । यह मदभरी मद गति से हस के समान चलती है । इसके तन पर उज्ज्वल वेग शोभा देता है और नाखून मोतियों से चमकते हैं । भ्रमर सहज ही भूल मे उसे फूल समझ कर तथा पुष्प रस वा मुग्ध के लोभ से उसके चारो ओर मण्डरा रहा है । इस प्रकार उसकी रूप-छटा नेत्रो से देखकर वह तोता बहुत हर्षित हुआ और विचार करने लगा कि इसके शरीर को ईश्वर ने किसी शुभ दिन बनाया है । यदि पार्वती व शिव की कृपा-दृष्टि हो तो यह महाराज पृथ्वीराज की रानी बने ।

टिप्पणी—१ 'स्वाति बूंद' का अर्थ मोती इन कारण से है कि स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरी हुई वर्षा की बूंदें मोती बन जाती हैं ।

२ काम-शास्त्र के अनुसार पद्मिनी नायिका के शरीर मे कमल की सी गन्ध आया करती है ।

३. 'उमा प्रसाद हर हेरियत' पवित्र का अन्वय इस प्रकार करना चाहिए—
उमा हर प्रसाद हेरियत अर्थात् उमा (पार्वती) और हर (शिव) के प्रसाद को मन मे देवता है अर्थात् कामना करता है ।

४ प्रस्तुत पद मे उपमा तथा भ्रांति अलंकार है ।

मुक समीप मन कुँअरि को लग्यो वचन के हेत ।

अति विचित्र पंडित हुआ कथत जु क्या अमेत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—हेत = हेतु; निमित्त, अमेत (अमित) = अत्यधिक ।

वे धैर्यशाली, साहसी, सुकर्मी व पराक्रमी वीर हैं मानो सुमत्त दानव के अवतार हो ।

✓ ^० दस च्यार जानि सब कला भूप ।

कद्रूप जान अवतार रूप ॥ २१ ॥

अनुवाद—वे चारो दिशाओ की कलाओ में निपुण हैं और सौन्दर्य के कारण काम के अवतार माने जाते हैं ।

कामदेव अवतार हुआ सुअ सुअ सोमेश्वर नन्द ।

सहस-किरन भलहल कमल रति समीप वर विंद ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—सुअ = सुत, नन्द = आनंदित करने वाले, सहस-किरन = सहस्र-किरन, सूर्य, भलहल = जगमगाना, खिलना, वर = दूल्हा, विंद = विद्यमान होते हुए ।

अनुवाद—सोमेश्वर का प्यारा पुत्र पृथ्वीराज मानो कामदेव का अवतार ही है । जिस प्रकार सहस्र-किरण सूर्योदय को पाकर कमल खिल उठता है उसी प्रकार वर (पृथ्वीराज) के समीप विद्यमान होने में यह नायिका मुशोभित होगी ।

टिप्पणी—इन पद में रूपक अलंकार है ।

सुनत स्रवन प्रधिराज जस उमंग वाल विधि अंग ।

तन मन चित चहुवाँन पर वस्यो सुरत्तह रंग ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—विधि = अच्छी तरह, रत्तह = अनुरक्त होकर, रंग = प्रेम रंग, सु = अच्छी तरह ।

अनुवाद—कानों में पृथ्वीराज का यश सुनकर उस वाला के समस्त अंग रोमांचित हो गए और उसके तन, मन और चित्त प्रेम रंग में अच्छी तरह रंग कर पृथ्वीराज में आसक्त हो गए ।

वैस विती तिसुता सकल आगम कियो वमन्त ।

मात पिता चिंता भई सोधि जुगति को कंत ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—वैस = वयस, अवस्था, वृत्त = यौवन, सोवि = ढूँढने के लिए, जुगति को = उपयुक्त ।

अनुवाद—उसकी (पद्मावती की) सम्पूर्ण बाल्यावस्था व्यतीत हो गई और उसके शरीर में यौवन का आगमन हुआ । अब उसके माता-पिता को उसके लिए योग्य वर खोजने की चिन्ता ने आ घेरा ।

सोधि जुगति को कत कियौ तव चित्त चहौँ दिस ।
 लयो विप्र गुरु बोल कही समुझाय बात तिस ॥
 नर नरिंद गढ़पति बडे गढ़ द्रुग असैसह ।
 सीलवंत कुल सुद्ध देहु कन्या सुनरेसह ॥
 तव चलन देइ दुज्जह लगन सगुन बंद दिय अप्प तन ।
 आनद उछाह समुदह सिपर वजत नह नीसॉन घन ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—तिस = उसको, असेमह = अशेष, सम्पूर्ण, वद = रोली (माग-लिक द्रव्य) अप्प तन = अपने हाथ में, दुज्जह = द्विज, चलन = चलने की अनुमति, लगन = विवाह का लगन, सगुन = शकुन, नद = नाद, नीमदि = नगाड़े ।

अनुवाद—तब योग्य वर की खोज के लिए राजा ने अपना मन चारों ओर दोड़ाया । फिर उन्होंने अपने कुलगुरु ब्राह्मण को बुलाया और नव वानें नमस्कार कर कही—सब बड़े-बड़े दुर्गों के श्रेष्ठ राजाओं में से उच्च वय का मुनील व गुणी राजा हो उससे मेरी कन्या की नगाई कर आओ । तब राजा ने अपने हाथ से ब्राह्मण को लगन व शकुन की रोली देते हुए विदा दी । उन समय सारे समुद्र शिखर में आनन्द और उत्साह का नया तथा गभीर नाद करने हुए नगाड़े वजने लगे ।

टिप्पणी—१. प्रस्तुत पद के तीसरे चरण में लाटानुप्रास अलंकार है ।

२. पाँचवें व छठे चरण में छेकानुप्रास अलंकार है ।

सवालक्ष्य उत्तर सयल कमऊँ गढ़ दूरंग ।

राजत राज कुमोदमनि हय गय द्विज्व अभंग ॥ २६

शब्दार्थ—सवालप्प = शिवालक, सयल = शैल, दूरग = दुर्गम, द्विव्व =
द्रव्य, अभग = अत्यधिक ।

अनुवाद—शिवालिक नामक उत्तरीय पर्वतमाला में अत्यन्त दुर्गम कुमाऊं
दुर्ग है । वहाँ कुमुदमणि राजा जिनके पास हाथी और घोड़े अनन्त हैं, शोभित
होते हैं ।

नारिकेल फल परठि दुज चौक पूरि मनि मुत्ति ।

दर्ई जु कन्या वचन वर अति आनन्द करि जुत्ति ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—परठि = प्रतिष्ठित करके, मुक्ति = मुक्ता, जुत्ति = युक्ति ।

अनुवाद—ब्राह्मण ने मणि और मोतियों से चौक पूर कर, वहाँ नारियल
का फल स्थापित कर दिया और आनन्दपूर्वक यथाविधि वाणी द्वारा वह कन्या
उस वर को दी अर्थात् सगाई कर दी ।

टिप्पणी—मनि, मुत्ति, एव वचन, वर, में छेकानुप्रास अलंकार है ।

विहसित वरं लगन लिन्नो नरिंदं ।

वजी द्वार द्वारं सु आनन्द दुंद ॥

गढनं गढ पत्ति सब बोलि नुन्ते ।

सत्र आड्य भूप कुटुव सजुत्ते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—लिन्नो = लिया, दुदु = दुदुमि, नगाडा, गढन = गढ़ो के, गढ-
पत्ति = दुर्गपाल, नुन्ते = निमग्नित किए, सजुत्ते = सयुक्त ।

अनुवाद—राजा ने हमते हुए वह मुन्दर लग्न स्वीकार किया । तब प्रत्येक
द्वार पर आनन्द के नगाडे बजने लगे । राजा ने सब दुर्ग रक्षकों को बुलावा
भेजा । सब पञ्चवार अपने परिवारों सहित आ पहुँचे ।

चले दस सहस्स असव्वार शान् ।

पूरिय पैदल जेति चेती नु थान ॥

मत मट गलित मै पंच दन्ती ।

मनौ साम पाहार बग पंत-पन्ती ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—यान = रथ, पूरिय = पूरित हुआ; जेति तेती सु = जितना था
उतना सब, थान = स्थानम्, साम् = श्याम, पाहार = पर्वत, वग पत-
पती = वगुलो की पति ।

अनुवाद—दस सहस्र रथारोही रथों पर सवार होकर चले । जितना स्थान
था, उसे पैदल सेना ने, सर्वथा भर दिया । साथ पाच-सी भस्त हाथी थे जिनका
मद वह रहा था । उनके दात ऐसे प्रतीत होते थे जैसे काजल के पर्वतों में
वगुलो की पत्तियाँ विराजमान हो ।

चले अग्नि तेजी जु तत्ते तुपार ।
चौवर चौरासी जु साकत्ति भार ॥ वरछा
कठ नग नूपं सनूप सुलालं ।
रग पंच रंग ढलक्कन्त ढाल ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—तुपार = घोड़ों की जाति, चौवर = चवर, चौरमीघुषरओ
का बना हुआ अश्वभूषण, साकत्ति = वरछा, नूप = अनुपम ।

अनुवाद—तुपार जाति के घोड़े अग्नि के वेग से बढ़े । उन पर चवर,
घुषरओ के भूषण और वरछों के समूह शोभा देते थे । उनके गलों में अतुल
लाल व रत्न शोभायमान थे और पाँच रंगों वाली ढालें उन पर भूल रही थी ।

पंच सुर सावह वाजिन्न वाज ।
सहस्स सहन्नाय अगि मोहि राज ॥
समुद सिर सिपर उच्छाह छाह ।
रचित मंडप तोरन श्रीयगाह ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—सहन्नाय = सहनाई, अगि = मृग, राज = शोभित, तोरन =
तोरण, बाहरी द्वार, श्रीयगाह = अगाध शोभा वाले ।

अनुवाद—बाजों से पाच प्रकार के शब्द निकल रहे थे । हिरनों का हृदय
हरने वाली हजारों तुरहियाँ बजती हुई शोभा दे रही थी । समुद्र गिरग दुर्ग
में भरपूर सलाह छाया हुआ था । अपार शोभा में युक्त मण्डप व बाहिरी द्वार
रचे गए थे ।

पद्मावती बिलपि बर वाल बेली ।

कही कीर सों बात तब हो इकेली ॥

भट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेह ।

बर चाहुआनं जु आनौ नरेस ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—बिलपि = रोती हुई, बर वाल बेली = नवीन लता के समान सुन्दर ।

अनुवाद—सुन्दर नन्ही बेल के समान पद्मावती ने तब तोते से एकात में रोते-रोते यह बात कही—हे तोते, तुम शीघ्र सुन्दर दिल्ली को जाओ और श्रेष्ठ चीहान राजा को ले आओ ।

टिप्पणी—बाल बेली में छेकानुप्रास अलंकार है ।

आनौ तुम्ह चहुवांन बर, अरु कहि डहै सदेस ।

सांस सरीराहिं जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेश ॥ ३३ ॥

अनुवाद—तुम चीहान को यह सदेश दे कर यहाँ आना कि जब तक शरीर में सांस है तब तक राजा पृथ्वीराज ही मेरे प्रिय हैं और कोई नहीं ।

प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिपि कगगर दिन्नों ॥

लगन वरग रचि सरव दिन्न द्वादस ममि लिन्नों ॥ ३४ ॥

सैं ग्यारह अरु तीस साख सवत परमानह ॥

जो पित्री-कुल सुद्ध वरनि वरि रक्खहु प्रानह ॥

दिष्पंत दिट्टि उच्चरिय बर इक पलक्क बिलव न करिय ॥

अलगारि रयनि दिनपच मँह ज्यों रुकमिनि कन्हर वरिय ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—जोग (योग्य) = के लिए, कगगर = कागज, पत्र, दिन्तो = दिया, लगन वरग = विवाह के लग्न की कुण्डली, द्वादस ममि = शुक्ल पक्ष की द्वादसी तिथि, साख = वैशाख, पित्री कुल = पितृ वंश, वरनि = वरणीया, वरि = वरणा कर, उच्चरिय = चलिए, अलगारि = पृथक् मार्ग में ।

अनुवाद—पद्मावती ने अपने प्रिय राजा पृथ्वीराज के लिए एक पत्र लिख

कर तोते को दिया । उस में लगन की कुण्डली वैसाख मास शक सवत् ११३० तथा शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि आदि पूरी-पूरी लिखी । साथ ही यह भी लिखा कि यदि आप शुद्ध क्षत्रिय वंश के व्यक्ति हैं तो मुझ वरणीया को वर कर मेरे प्राण बचाएँ । हे प्रिय, इस पत्र के दृष्टिगोचर होते ही उठकर चल पड़ो, क्षण भर भी देर ना लगाओ और पाँच रात दिनों में पहुँच कर एक तरफ से मुझे वैसे ले जाएँ जैसे श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले गए थे ।

दिग्पणी — अंतिम चरण में वाक्यार्थोपमा है ।

ज्यों रुक्मिनि कन्हर वरिय त्यों वरि सभरिकांत ।

सिव मंडप पच्छिम दिसा पूजिय समय सुप्रात ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—कन्हर = कन्हैया, वरिय = वरण किया ।

अनुवाद—हे साभर के प्यारे नरेण, जैसे कृष्ण ने रुक्मिणी का वरण किया था वैसे आप मेरा कीजिए । यहाँ पश्चिम दिशा में शिव का मण्डप है वहाँ मैं शिव की पूजा के लिए बहुत सवेरे पहुँचूंगी ।

लै पत्री सुक यौ चलयौ उद्यो गगन गहि वाव ।

जँह दिल्ली प्रथिराज वर अट्ट जाम में जाव ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—वाव = वायु, जाम = याम, प्रहर ।

अनुवाद—इस प्रकार वह तोता पत्र लेकर वायु के साथ आकाश में उड़ गया । वह आठ पहर में दिल्ली जा पहुँचा जहाँ पर पृथ्वीराज रहते थे ।

दिय कगगर नृप राजकर पुलि बंचिय प्रथिराज ।

सुक देपत मन में हँसे कियो चलन को साज ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—पुलि = खुलि, खोल कर, बंचिय = बाँचा ।

अनुवाद—तोते ने वह पत्र राजेश्वर के हाथ में दे दिया । पृथ्वीराज ने उसे खोल कर पढ़ा, तोते को देख कर हँसे और चलने की तैयारी करने लगे ।

उहै घरी, उहि पलन, उहै दिन, बेर उहै सजि ।

सकल सूर सामंत लिए सब ।

अनुवाद—जब वारात नगर के निकट पहुँची तब दोनों वर (कुमुदमणि और पृथ्वीराज) वहाँ उपस्थित हो गए। समुद्रशिखर पर दोनों ओर के राजाओं के घोड़े और हाथियों का बड़ा भारी शब्द हुआ। स्वागतकारी राज-कुमारों ने बहुत अच्छी तरह घोड़ों को मजा कर स्वागत किया। सब स्त्रियाँ वारात को देखने के लिए झरोखों और छतों पर बैठी हुई ओभा देने लगी। उसका मुखचन्द्र मानो शोक रूपी राहु की छाया में लीन हो गया। वह प्रतिक्षण झरोखे में से पुलकित हो कर भाँकती थी और दिल्ली के श्रेष्ठ राजा का मार्ग देखती थी।

टिप्पणी—‘उमय-भय’ में यमक ‘वनि-वनि’ में वीप्सा तथा पंचम चरण में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

दिग्धपंत पथ दिल्ली दिसाँन सुपभयो मुक जब मिल्यो आन।
सदेस सुनत आनद नैन उमगीय बाल मनमथ्य सेन ॥४२॥

शब्दार्थ—मनमथ्य = मनमथ, कामदेव।

अनुवाद—पद्मावती दिल्ली की ओर का मार्ग देखने लगी। इतने में तोता आ कर उसे मिला जिससे उसे अत्यंत आनंद हुआ। तोते के वचन सुन कर वह उमग से ऐसे भर गई जैसे कामदेव की सेना उनके हृदय में आ खड़ी हुई हो।

तन चिकट चीर डारयो उतार मज्जन मयक नव मत सिंगार।
भूपन भँगाय नपमिप अनृप मजिमेन मनो मनमथ्यभूप ॥४३॥

शब्दार्थ—चिकट चीर = मैला वस्त्र, मज्जन = स्नान, मयक = चद्रमा, नव मत निगार = नौवह श्रंगार।

अनुवाद—उसने (पद्मावती ने) शरीर से मैला वस्त्र उतार फेंका। उस चद्रमांगी ने स्नान के पश्चात् नौवह शृङ्गार किए। अन्यतः मुंदर अंगों पर गहने मगवा कर पहने। तब ऐसे लगता था जैसे कामदेव रूपी राजा ने अपनी सेना मजार्त हो।

सोन्नन्त थार मोतिन भराय भलहल करंत दीपक जराय ।

सगह सपिय लिय सहस बाल रुकमिनिय जेम लज्जत मराल ॥४४॥

शब्दार्थ—सोन्नन्त=सुवर्ण, जेम=ज्यो; लज्जत=लज्जित करती है, मराल=हंस ।

अनुवाद—सोने के बाल को मोतियों से भर कर, उनमें भलमलाते हुए दीपक धर कर और साथ एक सहस्र कुमारी मुखियों को लेकर रुकमिणी के समान अपनी चाल से हंसों को लज्जित करती हुई पद्मावती शिव मण्डप को चली ।

पूजियइ गउरि संकर मनाय दच्छिनइ अग करि लगिय पाय ।

फिर देपि देपि प्रथिराज राज हँसि मुद्ध मुद्ध चर पट्ट लाज ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—दच्छिनह=प्रदक्षिणा, मुद्ध मुद्ध=मोहित मुग्धा, नायिका; दच्छिनह अग करि=उनके अग शरीर या प्रतिमा की प्रदक्षिणा कर के; चर=चला दिया, पट्ट=वस्त्र, लाज=लज्जा ।

अनुवाद—उसने (पद्मावती ने) मन में गोरी व शकर का ध्यान करते हुए उनकी (मूर्तियों की) प्रदक्षिणा की और उन मूर्तियों पर गिर पड़ी । तत् पश्चात् राजा पृथ्वीराज की ओर देख वह मुग्धा नायिका (पद्मावती) मुग्ध हुई और उसने हँस कर लज्जा से मुँह ढाँप लिया ।

कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय लै चलयौ त्रिपति दिह्ली सुराय ।

भइ पवरि नगर बाहिर सुनाय पद्मावतीय हरि लीय जाय ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—त्रिपति=नृपति, पृथ्वीराज, पवरि=गबर, हरि लीय जाय=हरण कर के लिए जा रहा है ।

अनुवाद—राजा (पृथ्वीराज) ने यह देखकर उसका हाथ पकट कर उसे घोड़े की पीठ पर चढ़ा लिया और दिल्ली की ओर ले चले, नगर में बाहर भीतर इन प्रकार गबर सुनाई दी कि पद्मावती को हर कर लिए जाता है ।

बाजी सुघय हयगय पलांन, दौरे सुसज्जित दिस्सइ दिसांन ।

तुम्ह लेहु लेहु मुख जपि जोध हन्नाठ सूर सब पहरि क्रोध ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—पलान = पर्याण, काठी, दिस्सह दिसान = दिशा, दिशा से, जपि = जल्प, बोलना, हन्नाह = सन्नाह, कवच ।

अनुवाद—(उसी अवसर पर) युद्ध का नगाडा बजने लगा । हाथियों और घोड़ों पर काठियाँ आदि कसी गईं । योद्धा प्रत्येक दिशा से दौड़ पड़े । सब धूर वीर योद्धा कवच पहन कर शोध पूर्वक मुख से लेना, पकड़ना आदि शब्द ललकारते हुए कहने लगे ।

आगे जु राज प्रथिराज भूप पच्छे सु भयो सब सेन रूप ।

पहुँचे सुजाय तत्ते तुरग भुञ्ज भिरन भूप जुरि जोध जंग ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—जुरि = जुड़कर, भुञ्ज = भुज, भिरन = भिड़ कर ।

अनुवाद—राजा पृथ्वीराज आगे जा रहे थे । सब सेना उनके पीछे थी । तेजस्वी घोड़े उनके पास जा ही पहुँचे । भूमि पर राजा लड़ पड़े और उनके योद्धा भी (परस्पर) लड़ने लगे ।

उलटी जु राज प्रथिराज बाग थकि सूर गगन, धर धसत नाग ।

सामंत सूर सब कालरूप गहि लोह छोह बाहँ सु भूप ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—लोह = खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र, छोह = उत्साह ।

अनुवाद—राजा पृथ्वीराज ने ज्यों ही बाग मोड़ी तब (भय से) आकाश में सूर्य रुक गया और शेष-नाग पर स्थित भूमि नीचे धसने लगी । सब सरदारों और वीरों ने यमराज का रूप धारण किया हुआ था और योद्धा अस्त्र-शस्त्र को बहुत उत्साह से चलाते थे ।

कम्मौन, बांन छुट्टहि अपार लागंत लोह इमि सार धार ।

घमसाँन घान सब वीर पेत घन सोन वहत अरु रक्त रेत ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—नार धार = धारा-सार, वर्षा की झड़ी, घान = घाव या चोट, सोन = सोण, रक्त ।

अनुवाद—घनुषों ने अमरय बाण छूटते थे और वर्षा की झड़ी के समान कवचों पर आ लगते थे । उस भयंकर युद्ध में सब वीर हताहत हुए । रक्त बहने लगा और रेत लाल हो गई ।

मारे वरात के जोध जोह परि रुंढ मुंढ अरि पेत मोह ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—जोध = योद्धा ।

अनुवाद—पृथ्वीराज के योद्धाओं ने वरात के योद्धाओं को दूढ़ कर मार डाला । युद्ध भूमि शत्रुओं के सिरों और कवचों से नुगोभित हो गई ।

परे रहत रिन पेत अरि करि दिल्लिय मुप रूप ।

जीति चल्यो प्रथिराज रिन सकल सूर भय मुप्प ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—रिन = रण, रूप = रख, दिसा ।

अनुवाद—शत्रुओं को युद्ध भूमि में सुला कर दिल्ली की ओर मुह किया, जिससे सभी शूर-वीरों को बड़ा सुख हुआ ।

टिप्पणी—मुप, रूप में छेकानुप्रास अलंकार है ।

पदमावति इमि लै चल्यो हरपि राज प्रथिराज ।

एते परि पतिसाह की भई जु आनि आवाज ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—आनि = आने की, आवाज = समाचार ।

अनुवाद—इस प्रकार महाराज पृथ्वीराज हर्षित होकर पद्मावती को ले कर चले कि इतने में ही वादगाह के आने का समाचार मिला ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद के आवाज आदि शब्द फारसी के आवाज शब्दों के हिन्दी रूप हैं ।

भई जु आनि आवाज आय साहावनीन मुर ।

आज गहाँ प्रथिराज बोल बुल्लत गजत धुर ॥

क्रोध जोध, जोधा अनंत पती आनि गजिय ।

वाँन, नालि, ह्यनालि, तुपक, तीरह स्रव मजिय ॥

पठवै पहार मनो सार के भरि भुजान गजनेम बल ।

आए हकारि हकार करि पुरासान सुलतान बल ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—मुर = शूर वीर, गजत = गजंन करना तुपा, धुर = जोर से

जोध = युक्त, जोधा = योद्धा, अनि = अनीक सेना, नालि = तोप, हय-नालि = बन्दूक, तुपक = छोटी तोपी, सब = सर्व, सब, पव्वै = चलते हैं, सार के = लोहे के, बल = सेना, हकारि = बुलाए गए, हकार = अहकार ।

अनुवाद—यह समाचार चारों ओर फैल गया कि शूर शहाबुद्दीन आ गया है और बहुत ऊँचा गरज कर कहता है कि आज पृथ्वीराज को पकड़ लूँगा । उनकी सेना के सैनिक क्रोध से पूर्ण थे और असंख्य पक्षियों में बैठे हुए गरज रहे थे । वे सब बाणों, बड़ी छोटी तोपों, बन्दूकों व तीरों से सुसज्जित थे । गजनी-पति (शहाबुद्दीन) की सेना एकत्रित हो कर युद्ध करती हुई ऐसी लगती थी जैसे लोहे के पर्वत ही चल रहे हों । उस सेना में खुरासान के सुल्तान के सभी दल बुलाए गए थे जो कि अहकार करते हुए आए ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद के पंचम चरण में उत्प्रेक्षा तथा छठे चरण में वीप्सा अलंकार है ।

✓ पुरासान, सुल्तान, पंधार मीरं ।

बलप स्यो बलं, तेग अचचूक तीरं ॥

रुहगी, फिरंगी, हलव्वी, समानी ।

ठटी ठट्ट बल्लोच, ढाल निसानी ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—पुरासान = खुरासान, बलप = यवनो का देश विशेष, बल = सेना, रुहगी = तुर्कों की एक जाति, फिरंगी = विलायती, यवन विशेष, हलव्वी = सीरिया देश के निवासी, समानी = अभिमानो ।

अनुवाद—पुरासान, सुल्तान तथा पंधार के शासक मीर बल्लू की सेना महिन्त थे । उनके तलवार और तीर अमोघ थे । गर्वीले, रुहगी, फिरंगी, हलव्वी और बल्लोचों के भारी समुदाय थे जिनके पाम ढालें और झुण्ड थे ।

मजारी-धपी, मुप्प जवुक्क लारी ।

हजारी हजारी हुक्कें जोध भारी ॥

तिनं पप्पर, पीठ हय जीन साल ।

फिरंगी कती. पास. सकलात नाल ॥ ५६ ॥

शब्दायं—मजारी=मार्जारी, विल्ली, चपी=चशु वाले, जवुक=जवुक, सियार, लारी=लोमड़ी, हूकै=हुंकार करते हैं, पप्पर=युद्ध में हाथी घोड़ों पर डाली जाने वाली लोहे की भूल, साल=अलकृत, कती=छूरे, पास=पाण, मुकलान नाल=कलात देश की तोपें ।

अनुवाद—उनकी आखें विल्ली सी थी और मुख गीदट तथा लोमड़ी के थे । इस सेना में ऐसे ऐसे योद्धा हैं जो सहस्रों शत्रुओं को जीतने में समर्थ हैं । उन्होंने अपने घोड़ों की पीठ पर पाखुर जीनें और शालें डाली हुई थी । उनके पास फिरंग देश की कटारें और कलात की सुन्दर तोपें थीं ।

तहाँ घाग वाघं मरूरी रिछोरी ।

घनं सार सम्मूह, अरु चौर भोरी ॥

एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी ।

तुरक्की महावाँन फम्माँन वाजी ॥ ५७ ॥

शब्दायं—वाग=वाग-डोर, वाघ=वधी हुई, मरूरी=मरोट कर, रिछोरी=रिछोली, मोतियो की लड़ी, घन=घने, सार सम्मूह=लोहे (शस्त्र) का समूह, चौर=चवर, भोरी=सामान रखने के भोले, एराकी, अरब्बी, पटी, ताजी, तुरक्की=घोड़ों की जातियाँ, वाजी=वाज, घोड़े ।

अनुवाद—उन घोड़ों की वागों में मोती-मालाएँ सजा कर बांधी हुई थी । उन पर लोहे के शस्त्रास्त्रों का भार था, चवर लगे थे और भोले पड़े थे । वहाँ इराकी, अरब्बी, पटी, ताजी, तुरक्की जातियों के शीघ्रगामी घोड़े थे जिन पर धनुष और बड़े बड़े बाण पड़े हुए थे ।

इसे अस्सि असवार अग्गेल गोलं ।

भिर जून जेते सु तेते अमोल ॥

तिनं मद्धि साहाव सुलतॉन आयं ।

इसे रूप सौं फौज वरनाय जाय ॥ ५८ ॥

शब्दायं—इसे अस्सि असवार=ऐसे अस्सी असवार, अग्गेल गोल=

आगे के गोल (पक्ति) में, जून=जीर्ण, पुराना परन्तु यहाँ, जवान, वरनाया जाय=वरण की जाती है ।

अनुवाद—इस प्रकार के अस्सी सवार आगे की पक्ति में स्थित हैं । जितने भी जवान युद्ध में आगे बढ़ते हैं वे सब के सब अपनी सेना के अनमोल रत्न हैं । मुलतान शहाबुद्दीन स्वयं उनके बीच में स्थित हैं । कवि का कथन है कि इस सेना का वर्णन इसी रूप में किया जा सकता है ।

तिन घेरिय राज प्रथिराज राजं ।

चिहौं ओर घनघोर नीसाँन वाजं ॥ ५६ ॥

अनुवाद—उन्होंने राजा पृथ्वीराज को घेर लिया । चारो तरफ नगाडो की अति उच्च ध्वनि होने लगी ।

वज्जिय घोर निसाँन रान चौहान चहौं दिसि ।

सरुल सूर सामन्त समरि बल जंत्र मत्र तिस ॥

छट्टि राज प्रथिराज वाग मनौ लग्न वीर नट ।

कढ़त तेग मन बेग लगत मनौं वीजु ऋट्ट घट ॥

यकि रहे सूर कौतुग गगन रगन मगन भइ सोन धर ।

हटि हरपि वीर जगो हुलसि हुरेउ रंग नवरत्त वर ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—समरि=स्मरण कर, बलजत्र मत्र=बल रूपी यत्र मत्र, तिस=उसका, वीजु=विद्युत, घट=घटा, सूर=सूर्य, कौतिग=कौतुक, रगन-मगन=रगीन, हुरेऊ=स्फुरित हुआ, रत्त=रक्त ।

अनुवाद—नगाडे जोर-जोर से बजने लगे । मारे वीर सरदार पृथ्वीराज के बल को जत्र-मत्र के समान शत्रूक समझ कर उसके चारो ओर एकत्र हो गए । राजा पृथ्वीराज ने उछल कर घोडे की वाग पकड़ी जैसे कोई वीर नट हो । उन्होंने मन की गति से जब तलवार निकाली तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेघी घटा में बिजली कोध गई हो । अद्भुत खेल देखने को आकाश में सूर्य रुक गया । पृथ्वी रुधिर के रंग में रंग गई । वीरो के हृदय हर्ष और उल्लास से पूर्ण हो गए और रक्त का मुन्दर रंग उनके शरीर में चमकने लगा ।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त वीर व्यञ्जना का सुन्दर उदाहरण है । पहले दो चरणों में वृत्त्यानुप्रास की छटा दर्शनीय है तो तीसरे चौथे चरण में उत्प्रेक्षा व उपमालकार की शोभा सुन्दर बन पड़ी है ।

हुरेउ रंग नव रत्त वर, भयेऊ जुद्ध अति चित्त ।

निस वासर समुक्ति न परत न को हार नह जित्त ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—चित्त = विचित्र, वासर = वानर, दिन ।

अनुवाद—नए रक्त का सुन्दर रंग उनके शरीर में झलकने लगा । बहुत अद्भुत सग्राम हुआ । दिन रात का भेद न मूकता था और न यही पता चलता था कि कौन हारा, कौन जीता ।

न को हार नह जित्त रहे रहहिं सूर वर ।

धर उपपर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ।

कहाँ कमध, कहीं मध्य, कहीं कर, चरन, अन्तररि ।

कहीं कन्ध वह तेग, कहीं सिर जुट्टि फुट्टि उर ॥

कहीं दन्त मन्त ह्य पुर पुपरि कुम्भ असुण्डह रुण्ड मव ।

हिंदवान रान भय भॉन मुख गहिय तेग चहुआँन जव ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—रहे न रहहिं = रहा नहीं जाता, धर = धरा, पृथ्वी, भर = भट्ट, महाभर = महाभट, कमध = कवध, घड, मध्य = मन्तक, कर = हाथ, अन्तररि = अन्तडी, वह = चलती है, जुट्टि फुट्टि = टकरा कर फूटते हैं, पत-मत = मत्त हाथी, ह्य = घोड़े, पुर पुपरि = सूर और खोपड़ी, कुम्भ = हाथियों के मस्तक का गोल उभरा हुआ भाग, असुण्डह = मूड, रुण्ड = घड, भॉन = भानु, नूर्य ।

अनुवाद—वह युद्ध इतना विचित्र था कि, किन्हीं की जय-पराजय का ज्ञान न चलता था । न कोई सूरमा बचे और न बचेंगे । वे महा भयकर युद्ध कर रहे थे और पृथ्वी पर घायलों और मृतकों का भार पड़ता जाता था । वही केवल घड पड़े थे और कहीं सिर । कहीं हाथ-पाँव और कहीं अंति । कहीं पैरों के कंधे पर गड़ग चलते हैं । कहीं सिर परम्पर टकराते हैं ।

वरि गोरी पद्मावती गहि गोरी सुलतॉन ।

निकट नगर दिल्ली गये चत्रभुजा चहुवाँन ॥ ६८ ॥

अनुवाद—पृथ्वीराज चौहान पद्मावती मुन्दरी को वरण करके और गोरी सुलतान को पकड़ कर दिल्ली नगर के निकट चत्रभुजा (चतुर्भुजा देवी का कोई स्थान विशेष) पहुँच गए ।

। बोलि विप्र सोधे लगन सुभ धरी परदिय ।

। हर बॉसह मण्डप बनाय करि भॉवरि गठिय ॥

ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रति वर ।

पद्मावति दुलहिन अनूप दुलह प्रथिराज राज नर ॥

उड्यो साह साहावदीं अट्ट सहस हय वर सुवर ।

है दॉन मॉन पट् भेष को चढ़े राज द्रग्गह हुजर ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ—परदिय = प्रतिष्ठापित की, निश्चित की, हर = हरे, गठिय = ग्रंथि बन्धन, भँवरि = विवाह नम्बन्धी अग्नि प्रदक्षिणा, ब्रह्म = ब्राह्मण, चौरी = वेदी, जु प्रतिवर = वर प्राप्त का स्थान, उड्यो = दण्डित किया, हयतर = श्रेष्ठ घोड़े, सुवर = अत्यन्त श्रेष्ठ, पट्भेष = छ प्रकार के दानपात्र, यति, योगी, ब्राह्मण, मन्थानी, चारण, जगम, द्रग्गा हुजर = सामने दुर्ग पर ।

अनुवाद—पृथ्वीराज ने ब्राह्मण को बुलवा कर विवाह का लग्न निकलवाया और मांगलिक मुहूर्त निश्चित किया । हरे वामो का मण्डप बनवा कर यज्ञ-कुण्ड, प्रदक्षिणा और ग्रंथि बधन की रीतियाँ पूरी की । ब्राह्मण वेद मन्त्रों का पाठ कर रहे थे । यज्ञवेदी पर जो वर प्राप्ति का स्थान था वहाँ अनुपम वधू पद्मावती और वीरवर राजा पृथ्वीराज शोभायमान थे । उस श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन वादशाह को आठ हजार उनम घोड़े दण्ड रूप में देने की आज्ञा दी और छ प्रकार के दान-पात्रों का यथोचित सम्मान देकर सामने अपने दुर्ग में चढ़ गए ।

टिप्पणी—इन कवित्त से तत्कालीन वैवाहिक रीति रिवाजों और सामाजिक अवस्था की एक भाँट दिखाई पड़ती है ।

चाढ्य राज प्रथिराज छाँड़ि साहावदीन सुर ।

त्रिपत सूर-सामन्त, वजत नीसाँन गजत धुर ॥

चन्द-वदनि भ्रिग-नयनि कलस लेसिर सनमुष जुष ।

कनक धार आरति वनाय मोतिन वँघाय मुष ॥

मण्डल मयंक वर नार सब आनन्द कण्ठह गाइयउ ।

ढोरत चँवर किकुर करहि मुकुट सीस तिक जू दियउ ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—त्रिपत = तृप्त हुए, मनमुष = मन्मुख, सम्मुख, जुष = योषित, स्त्री, तिक = प्रत्तर काति का, करहि = हाय मे ।

अनुवाद—वीर शाहबुदीन को मुक्त कर राजा पृथ्वीराज अपने दुर्ग पर चढ़ गए । सब सरदारों ने उन्हें नमस्कार किया और नगाड़े उच्च स्वर में बजने लगे । चंद्रमुखी एवं मृगनयनी स्त्रियाँ सिर पर कलश धर कर सामने आईं । सुवर्ण के घालों में मोतियों को भली भाँति सजाकर और मधुर स्वर से वे (श्रेष्ठ नारियाँ) वहाँ के गीत गा रही थी । जब राजा ने सिर पर मुकुट धारण किया तब सेवक हाथों में चवर ढलाने लगे ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में लुप्तोपमा अनकार है ।

चढ़े राज-द्रुग्गह त्रिपति सुमत राज प्रथिराज ।

अति अमन्द आनन्द मे हिन्दुवाँन सिर-ताज ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—राज-द्रुग्गह = राजदुर्ग, सुमत = सुद्धिमान, अकद = तीव्र, सिरताज = शिरोमणि ।

अनुवाद—हिन्दुओं के परमपूज्य महाराज पृथ्वीराज आनन्दपूर्वक राजदुर्ग पर चढ़ गए ।

थकि रहे सूर मोतिघ गिगत, रंगन भगन भयश्रोत धर ।
हदि हरपि वीर जग्गे हुलसि, दुख रग नवरत नर ॥

(दिल्ली वि० १६५४, आगरा १६४८, राजपूताना १६५५)

३. कुटिल केस सुदेस पौहप रच्चियत पिकक सट ।
कमल गध वय सध हस गति चलत मद मंद ॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति वूँद जस ।
भमर भवति भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस ॥
नैन निरखि सुख पाय सुक यह सुदिन्न मूरति रचिय ।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥

(आगरा वि० १६४६, ५२)

४. घन निसान बहु साद, नाद सुरपच बजत दिन ।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साजतिन ॥
गज अस्प गज पतिय, मुहर सेना तिय सपह ।
इक नायक कर धरी पिनाक धरमर रज रप्पह ॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उंभर डमर ।
भंडार लछिय अगनित पदम सो पदमसेन कुंकर सुधर ॥

(आगरा १६५०)

५. प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिपि कगार दिन्नी ।
लगुन विरग रचि सरन दिन द्वादस सनि लिन्नी ॥
सैं अरु ग्यारह तीस साप सवत् परमानह ।
जोवित्री कुल मुद्र वरनि वर रप्पहु प्रानह ॥
दिप्पत दिष्ट वह वरियवर इक पलक विलच न करिय ।
अलगा रयन दिन पत्र महि ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥

(आगरा वि० १६५०, ५३)

- ६ न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर ।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ॥

कहौ कमध कहौ मरध कहौ कर चरन अंतसरि ।
 कहौ कंवि वहि तेग; कहौ सिर जुहि वुहि उर ॥
 कहौ पंत मत हम पुर पुपरि कभ भ्रमु छह रु ड सब ।
 हिन्दवान रान भय भौरमुष गहिय तेग चहुवाँन जव ॥

(आगरा वि० १६५१, दिल्ली ५५)

सभरि नरेस सोमेस पूत ।
 देवंत रूप अवतार धूत ॥
 सामंत सूर सच्चै अपार ।
 भूजाँन भीम जिम सार भार ॥
 जिहि पकर साह साहाव लीन ।
 तिहुँ वेर करिय पानीय हीन ॥
 मिंगनि सुसह गुन चढ़ि जजीर ।
 चुक्के न सबद वेवत तीर ॥
 बल, बैन करन जिमि दान पान ।
 सत सहम सील हरिचन्द समान ॥
 साहस सुक्रम विक्रम जुवीर ।
 दौनन सुमत अवतार वीर ॥ -

(आगरा वि० १६५१)

निकट नगर जव जानि वरविध उभय भय ।
 समुद सिपर घन नद डढ दुहुँ ओर घोर गय ॥
 अगिवानिय अगिवान कुँअर वनि वनि हिय सज्जति ।
 टिप्पन को त्रिय सवनि चढि गौस छाजन रज्जति ॥
 विलपि अरुस कुँ नरि वदन मनी राह छाया मुख ।
 भूपति गवप्पि पल पल पलकि दिपत त दिल्ली कुपनि ॥

(आगरा वि० १६५२)

जिहि पकरि साह साहावलीन ।
 तिहुँ वेरि करिय पानीय हीन ॥

सिंगिनि सुसद गुनि चढ़ि जँजीर ।
 चुक्कड़ न सबद बेधत तीर ॥
 साहस सुकम्म विक्रम जु बीर ।
 दानव सुमत्त अवतार धीर ॥
 दस च्यरि जानि सब कला भूप ।
 केंद्रप्प जानि अवतार रूप ॥

(दिल्ली वि० १६५५)

१०.

संदेस सुनत आनद नैन ।
 उमगीय बाल मन मत्थ सैन ॥
 तन चिकट चीर डारयो उतारि ।
 मंडान मयक नव सित सिंगार ॥
 भूषन मंगाय नष-सिष अनूप ।
 सजि सैन मनौ मनमत्थ भूप ॥
 सोत्रन्न थार मोतिन भराय ।
 मल्लहल करंत दीपक जराय ॥
 संगह सषीय लिय सहस बाल ।
 रुकमिनिय जेय लज्जत मराल ॥

(दिल्ली वि० १६५४)

११.

भई हूह परताप । परथौ टिण्यौ अरसी चर ॥
 उठ्यौ कटि तरवारि । दई भुज कन्ह वामकर ॥
 इक्क सोह वर ओर । गैर पण्यर गहि डारी ॥
 एक अगनिता मद्धि । आनि कंपी धृत धारी ॥
 बहुआन कन्ह अगौ सुवर । ता पच्छे लोहन दग्यौ ॥
 पाजुलित सत्त वर बीर मति । बीर बीर रस सौ छग्यौ ॥

(दिल्ली वि० १६५८)

परिशिष्ट—३

(सहायक पुस्तको की सूची)

- १ अपभ्रंश काव्य त्रयी—सम्पादक—श्री लालचन्द्र गाधी (१९२७ ई०) ।
- २ अपभ्रंश साहित्य—डा० हरवश कोछड़ ।
- ३ अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी को योगदान—डा० नामवर सिंह ।
- ४ एनन्स एण्ड ऐंटीक्विटीज आफ राजस्थान—कर्नल टाड ।
- ५ कविता कौमुदी भाग-१—रामनरेश त्रिपाठी ।
- ६ काव्य के रूप—वा० गुलाबराय ।
७. काव्य दर्पण—रामदहिन मिश्र ।
- ८ काव्य-ममीक्षा—श्री सुरेशचन्द्र गुप्त ।
- ९ काशी विद्यापीठ रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ ।
- १० केशोत्सव स्मारक संग्रह ।
- ११ गद्य-पद्य—श्री सुमित्रानन्दन पन्त ।
- १२ चन्द्रवरदाई और उनका काव्य—डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ।
- १३ चन्द्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो—डा० रामचरण महेन्द्र ।
- १४ डिगल में वीर रम—श्री मोतीलाल मनेरिया ।
- १५ डिगल कोश—कविगज मुरारिदीन ।
- १६ पद्मावती समय—श्री विश्वनाथ गौड़ ।
- १७ पृथ्वीराज चरित्र—वा० रामनारायण दूगड ।
- १८ पृथ्वीराज रामो—नागरी प्रचारिणी सभा ।
- १९ पृथ्वीराज रासो—सम्पादक-प० मयुराप्रसाद दीक्षित ।
- २० पृथ्वीराज गनो के दो समय—डा० मागीन्य मिश्र ।
- २१ भूपण प्रभावली—नागरी प्रचारिणी सभा ।
- २२ महानवि चन्द्रवरदाई और पद्मावती समय—डा० राजेन्द्र शर्मा ।
- २३ मिश्रबन्धु विनोद भाग-१—श्री मिश्रबन्धु ।
२४. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा—श्री मोतीलाल मनेरिया ।

२५. रासो की भाषा—डा० नामवर सिंह ।
 २६. रेवातट—डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ।
 २७. वीर काव्य—डा० उदयनारायण तिवारी ।
 २८. वीर काव्य-संग्रह—प० भागीरथ प्रसाद दीक्षित ।
 २९. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—डा० गोविन्द त्रिगुणायत ।
 ३०. सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी व डा० नामवरसिंह ।
 ३१. साहित्यालोचन—वा० श्यामसुन्दर दास ।
 ३२. साहित्य-मुमन—सम्पादक-श्री हरशरण दास 'शरण'
 ३३. सिद्धान्त और अव्ययन—डा० गुलावराय ।
 ३४. हिन्दी के कवि और काव्य भाग-१—श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ।
 ३५. हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डा० किरणकुमारी गुप्ता ।
 ३६. हिन्दी के गौरव ग्रन्थ—राजकमल प्रकाशन ।
 ३७. हिन्दी नवरत्न—श्री मिश्रबन्धु ।
 ३८. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास—डा० शम्भूनाथ सिंह ।
 ३९. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ।
 ४०. हिन्दी साहित्य—डा० श्यामसुन्दर दास ।
 ४१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा ।
 ४२. हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
 ४३. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
 ४४. हिन्दी साहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
 ४५. हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० लक्ष्मीभागर बापूण्य ।

पत्र-पत्रिकाएँ

- | | |
|--------------------------------------|------------------------------|
| १. अवतिका । | २. आलोचना । |
| ३. जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी—बंगाल । | ४. नागरी प्रचारिणी पत्रिका । |
| ५. राजस्थान भारती । | ६. सम्मेलन पत्रिका । |
| ७. मरन्वनी । | ८. सरस्वती मवाद । |
| ९. साहित्य | १०. साहित्य मन्देश । |

